RNI No. 7127/60 डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 अंक : 01 कुल पृष्ठ : 36 4 जनवरी, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

मांझी तुमसे पाया वो सभी अनूठा, मैं ही नहीं अनोखा,
कितने विश्वासों का धनी बना पर, जग से पाया धोखा।
जाने पहचाने तुम, अरमानों में भी तुम,
मुझे एकता का अर्थ अब आ ही गया।।

संघशक्ति

4 जनवरी, 2019

वर्ष : 56 अंक-01

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ संघ स्थापना दिवस (नव वर्ष संदेश)	✍	05
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
❍ खोये हैं प्रश्न मैंने	✍ श्री अजीतसिंह धोलेरा	08
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	10
❍ आध्यात्मिक रूपान्तरण	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	13
❍ मैं क्षत्राणी	✍ डॉ. अन्जु	16
❍ समाज जागृति की भीख	✍ श्री नरेन्द्रसिंह जसोल	16
❍ विचार-सरिता (नवत्रिंशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	17
❍ प्रेरक कथानक	✍ संकलित	18
❍ समाज के प्रति युवकों की चेतना	✍ श्री मूलसिंह चांदेसरा	20
❍ जनक ने कराया अष्टावक्र को ब्रह्म ज्ञान	✍ संकलित	21
❍ उडणा पृथ्वीराज	✍ श्री हनुवंतसिंह नंगली	24
❍ मेहंदी के फूल	✍ श्री संजयसिंह पीपली	28
❍ रानी विष्णुप्रसाद कुँवरिजी बाघेली	✍ श्री अवधबिहारीलाल कपूर	32
❍ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

संस्थापक का निर्वाण दिवस :

उनतालीस वर्ष पूर्व 7 दिसम्बर, 1979 को पू. तनसिंहजी का देहान्त हुआ था। 7 दिसम्बर को उनके चालीसवें निर्वाण दिवस पर जगह-जगह श्रद्धांजलि कार्यक्रम आयोजित किए गये। कार्यक्रमों में उनके पुण्य स्मरण के साथ-साथ उनके चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित की गई। भजन संध्याओं का भी कुछ जगह आयोजन हुआ। राजस्थान व गुजरात के अलावा महाराष्ट्र और कर्नाटका की शाखाओं में भी निर्वाण दिवस पर श्रद्धांजलि कार्यक्रम आयोजित हुए। पूज्यश्री की जागृति, उनकी सक्रियता, उनके समाज के प्रति समर्पण और श्री क्षत्रिय युवक संघ के रूप में उनकी अनुपम भेंट की साधना आदि उद्‌बोधनों के विषय रहे। एक जागृत व्यक्ति ही किसी को जगा सकता है। वे जागृत थे और उन्होंने हमें जागृति का मार्ग दिया। इस मार्ग पर लगातार चलते रहने की आवश्यकता है। लगातार चले जाते रहने पर ही वह जागृति की स्थिति आती है। थोड़े जागे, फिर सो गए। फिर थोड़े जागे और फिर सो गए। अर्थात् संघ साधना में जुटे और कुछ समय बाद फिर निष्क्रिय हो गए। ऐसा स्वाभाविक है। सांसारिक आकर्षण, सांसारिक वातावरण असर डालता है। परन्तु निराश न होकर फिर-फिर सक्रियता प्रारम्भ करते रहें तो वह स्थिति आएगी कि सक्रियता और स्मरण सदैव बना रहेगा। ऐसी सतत् चेष्टा ही जागृति पैदा करेगी और ऐसी जागृति पैदा करके ही हम पू. तनसिंहजी को सच्ची श्रद्धांजलि दे सकेंगे। सदैव स्मरण बना रहे कि मैं क्षत्रिय युवक संघ का स्वयंसेवक हूँ, मेरा व्यवहार हर जगह उसी के अनुरूप बना रहे, यही पू. तनसिंहजी की चाह थी, उसे पूरी करें यह हमारा दायित्व बनता है। हमारे जीवन में गंभीरता आए और हम सामाजिक दायित्व को निभाना हमारे जीवन का अंग बना लें। संघ साधना में रम जाएँ तो हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढेंगे। यही पूज्यश्री की चाह थी। जयपुर के कार्यक्रम में संघप्रमुखश्री का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ।

समीक्षा बैठक :

संघ में कार्य विभाजन कर विभिन्न दायित्व स्वयंसेवकों को सौंपे जाते हैं। छोटे-छोटे क्षेत्रों का दायित्व सौंपा जाने से अनेक लोगों को जिम्मेदारीपूर्वक कार्य करने का अवसर मिलता है। यह उनके लिये प्रशिक्षण का कार्य भी करता है। संघ कार्य करने के लिये अनेक कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है, इसलिए अनेक लोगों को जिम्मेदार बनाने की प्रक्रिया चलती रहनी चाहिए। इससे नई पीढ़ी प्रशिक्षित होती है जो निरंतर बहते रहने वाले संघ प्रवाह के लिये आवश्यक है।

वर्ष भर के संघ कार्य की समीक्षा हेतु 16 दिसम्बर को संघशक्ति कार्यालय जयपुर में समीक्षा बैठक रखी गई। इसमें सभी कार्यकारियों, संभाग प्रमुखों व प्रान्त प्रमुखों की उपस्थिति रही। अपने-अपने क्षेत्र में वर्ष भर में लगे शिविरों, शाखाओं, स्नेह मिलनों, जयंतियों तथा अन्य संघ सम्बन्धित कार्यों की समीक्षा की गई। आवश्यकतानुसार क्षेत्रों व दायित्वों में कुछ फेर-बदल किया गया। आगे के वर्ष हेतु शिविरों का निर्धारण तो जून माह में होता है पर अन्य कार्यों हेतु सभी ने अपने लक्ष्य निश्चित किए। संघप्रमुखश्री ने शिविर कुछ कम करने, पर शाखाओं की संख्या बढाने हेतु निर्देश दिए। शाखाओं की गुणवत्ता बढाने हेतु शाखा प्रशिक्षण शिविर आयोजित करने का भी निश्चय किया गया। विभिन्न प्रकोष्ठों के कार्यक्रमों की सूचना भी साझा की गई।

स्थापना दिवस :

22 दिसम्बर, 1946 को श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना हुई थी। 22 दिसम्बर, 2018 को 73वाँ स्थापना दिवस नई उमंग लेकर आया। सभी शाखाओं में, कहीं सम्मिलित शाखाओं के कार्यक्रम में और कहीं बड़े रूप में कार्यक्रम आयोजित किए जाते रहे हैं। व्यक्ति के जीवन में 72 वर्ष बहुत बड़ी अवधि है, लेकिन सामाजिक

(शेष पृष्ठ 27 पर)

संघ स्थापना दिवस
नव वर्ष संदेश

प्रिय आत्मीय जन

वर्तमान में क्षत्रिय वर्ग के लिये आज का दिन एक ऐतिहासिक पर्व है। हजारों वर्षों से भारतवर्ष पर विदेशियों की दृष्टि रही है। उन्होंने हमारे देश पर अनेकों बार आक्रमण किये। इसी वर्ग के लोगों ने उन आततायी आक्रमणकारियों के इरादे सफल नहीं होने दिए। अपने प्राण न्योछावर करके भी भारतवर्ष के जन-जन को गुलाम होने से बचाया। 1300 वर्ष पूर्व पश्चिम से एक क्रूर राष्ट्रवादी ताकत ने पूरे विश्व को अपने अधीन करने का प्रयत्न किया। तलवार के बल पर कत्लेआम करके देशों को गुलाम बनाते, धर्म परिवर्तन करते हुए अपने राष्ट्रवाद का विस्तार किया। पूरे संसार को अपने गिरफ्त में ले लिया। हमारा देश भी अछूता नहीं रहा। बार-बार आक्रमण करके हमारी समृद्धि को लूट कर ले गए। क्षत्रिय वर्ग ने बहुत संघर्ष किया। हमारी कुछ त्रुटियों के कारण आखिरकार हमें गुलाम बना लिया गया। उसी आँधी ने हमें आपस में लड़ा कर अपना शासन स्थापित कर लिया। वह आंधी कमजोर पड़ी तो एक दूसरे छद्म और व्यापारिक वर्ग ने पश्चिम से आकर पूरे देश को गुलाम बना लिया। क्षत्रियों ने उनका बड़ा मुकाबला किया किन्तु अपनी आजादी को न बचा सके। लगभग दो शताब्दी बाद उनको भी भारतवर्ष से जाना पड़ा। और देश आजाद हुआ। परन्तु हमारा स्वराज भी पूरे देश को खाने लगा। परिणामत: आज देश की दशा क्या है सभी जानते हैं।

देश पर होने वाले आक्रमणों से संघर्ष करने वाला वह क्षत्रिय वर्ग कोई और नहीं राजपूत कहलाने वाले हमारे पूर्वज ही थे। लगातार आक्रमणों से त्रस्त होकर हम थक गए और हमारी दशा के साथ दिशा भी बदल गयी। कमजोर और रुग्णावस्था को हमने अपनी नियती मान ली। पुरुषार्थ छूट गया। सब कुछ भूल गये और जमाने के साथ बह गये। अपने इतिहास, संस्कृति, धर्म-कर्म को भूल गए। पूरी जाति निष्प्राण सी हो गयी। इसी समय 72 वर्ष पूर्व एक युगदृष्टा पू. तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की। उसी थकी मांदी रुग्ण जाति में प्राण फूंके। पूरी जाति को पुन: स्वास्थ्य प्रदान कर शक्तिशाली बनाने का बीड़ा उठाया। सामूहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली पर संगठन खड़ा हो गया। प्रतिदिन अभ्यास होने लगा। युवावस्था प्राप्त होने से पूर्व ही युवक युवतियों में ऊर्जा बढने लगी। शताब्दियों से बन्द पड़ी शिराओं में रक्त संचार होने लगा। नगर-गाँव-ढाणी तक विस्तार होता जा रहा है। पूरी राजपूत जाति अभी जाग्रत नहीं हुई है क्योंकि शताब्दियों का अन्धकार मिटाने में समय तो लगेगा लेकिन रात कितनी भी लम्बी क्यों न हो आखिर उषाकाल आता ही है। धैर्य और दक्षता के साथ पथ विचलित पूरी राजपूत जाति को पुन: उस त्याग और बलिदान के मार्ग पर प्रतिष्ठित करना ही हमारा अभियान है, ताकि न केवल अपनी जाति, न केवल देश, परन्तु समस्त मानव जाति के जीवन में सुख और समृद्धि आ सके। यही क्षत्रिय को भगवान द्वारा सौंपा गया कर्तव्य है। इस कर्तव्य पालन को ही क्षात्रधर्म कहा गया है। इसका पालन ही हमारे इस जीवन का लक्ष्य है। अहर्निश कर्म में रत रहकर पूरी जाति को जगाना और फिर सब सोये हुये लोगों को जगाना ही पड़ेगा। विष का विनाश और अमृत की रक्षा करना ही क्षात्रधर्म है। चलते रहें-चरैवेति चरैवेति। आप सबके उज्ज्वल, शान्त, निर्भय जीवन के लिये संघ के 73वें वर्ष में प्रवेश पर आप सबको नववर्ष पर मंगल कामनाएँ।

सदैव आपके साथ खड़े रहने की कामनाओं के साथ -

आपका

(भगवान सिंह)

संघ प्रमुख

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम बाड़मेर में 14 मई, 2018 संघप्रमुखश्री भगवानसिंहजी द्वारा शिविरार्थियों हेतु प्रभात संदेश)

जब हम क्षत्रिय युवक संघ के शिविर में आते हैं तो थोड़े समय तक तो जो हमने संसार में जीवन जिया है और साधारणतया जैसा जीवन जीते हैं, उसका प्रभाव हमारे ऊपर रहता है। फिर संसार धीरे-धीरे गायब होता है और शिविर हमारे सामने रहता है। तब जाने अनजाने शिविर का प्रभाव हमारे अन्दर प्रविष्ट कर पाता है। हमने भली प्रकार यह समझ ही लिया है कि क्षत्रिय युवक संघ का जीवन एक साधक का जीवन है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि एक तपस्वी का जीवन है। अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये जितनी भी कठिनाईयाँ आती हैं, उन सबको झेलने की, उनसे संघर्ष करने की जो क्षमता हमारे अन्दर आती है, वह इसी तपस्या का परिणाम है।

आप अपना दर्शन करते हैं कि आप क्या हैं। तामसिक, राजसिक और सात्विक प्रवृतियाँ हमारे अन्दर हैं। इन्हीं प्रवृतियों को लेकर हम आते हैं। सबसे अधिक आज संसार में तमस फैला हुआ है, अज्ञान फैला हुआ है, चेतना पर अन्धकार फैला हुआ है। यह तमस हमें ढलान की ओर ले जाता है। सुबह-सुबह जब शंख बजता है, विशल लगती है, तो इसी तमस के प्रभाव से हमारे मन में आती है कि थोड़ी देर और सो लें। जबकि हम इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि अब सोने का समय नहीं रहा है। अब जागने का समय है। जानते हैं हम, जानते हुए भी थोड़ी देर सोने का प्रयत्न करते हैं। तब हम साधना मार्ग से विचलित हो जाते हैं, तपस्या से डिग जाते हैं और अपने आप को पतित करने को तत्पर हो जाते हैं।

संघ के निर्देशों का पालन करना चाहते हुए भी बाहर के प्रभाव के कारण हम पालन नहीं कर पाते। अन्य सब लोग उठ गए हैं, इससे स्वयं को लज्जा आती है कि अब मुझे भी उठ जाना चाहिए। यह भाव भी कई बार हमारी सहायता करता है। यह लज्जा भी हमको निर्देशों का पालन कराने में सहायता करती है। लेकिन वह अन्दर बैठा हुआ तमस अभी भी बैठा है। निवृत होकर आएंगे तो विचार आता है, अभी तो पांच बजे तक कुछ और कर लें। कुछ नहीं सूझता तो चाय पीकर फिर सो जाते हैं। हमको इस सबका दर्शन करना चाहिए, कि अन्दर कैसा संघर्ष चल रहा है। यह युद्ध हमारे अन्दर चल रहा है। क्षत्रिय तो वह है जो इस युद्ध को पार कर जाता है। इस तामस वृति को उखाड़ फेंकता है। अपनी रजशक्ति और सात्विक शक्ति को जगाता है। घर में, गाँव में, विद्यालय में, छात्रावास में जहाँ हम रहते हैं, वहाँ की भी एक मर्यादा होती है। लेकिन वहाँ कोई साधना का मार्ग नहीं है। हमें घर में रहना है, छात्रावास में रहना है और वहाँ भी हमें वैसा ही जीवन जीना है, जैसा शुद्ध रूप से साधक जीवन यहाँ जीते हैं। अत: हमें यह स्पष्ट अनुभव होना चाहिए कि हमारे अन्दर एक संघर्ष छिड़ गया है कि हम पहचानें कि हमको क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए।

आप जानते हैं कि शरीर में कोई रोग आ जाता है और हम चिकित्सक के पास जाते हैं तो चिकित्सा ठीक प्रकार से तभी हो सकती है जब हम चिकित्सक की सलाह का पालन करें। तीन बातें चिकित्सक हमें बताता है। एक दवा (औषधि), दूसरा पथ्य और तीसरा परहेज। औषधि के बिना तो हम ठीक होने वाले नहीं हैं। लेकिन औषधि के अलावा हमें हमारे भोजन पर भी ध्यान देना होगा। इसको पथ्य कहा जाता है। यह सहायक तत्व है। फिर तीसरा है, परहेज। कुछ बातों के लिये मना किया जाता है कि ऐसा नहीं करना है। यदि आप दवा भी ले रहे हैं, पथ्य भी चिकित्सक के अनुसार ले रहें हैं, पर

जो नहीं लेना चाहिए वो ले रहे हैं, अर्थात् परहेज नहीं रख रहे हैं तो चिकित्सक भी रोग निवारण नहीं कर पाएगा। हम भी यहाँ संसार से आचरण की रुग्णता को लेकर के आए हैं। संसार से लाई गई इस बीमारी की चिकित्सा यहाँ होती है। लेकिन इसमें आपके सहयोग की बहुत आवश्यकता है। चिकित्सक जो बताता है, वैसा हम करते हैं तो चिकित्सक कहता है-'थैंक्यू फॉर योर कॉपरेशन' आपके सहयोग के लिये धन्यवाद। चिकित्सक कहता है कि मैं रोग निवारण नहीं कर सकता जब तक कि आपका सहयोग न हो। क्षत्रिय युवक संघ में हम हमारी चिकित्सा करवाने आए हैं, तो आपके सहयोग की बहुत आवश्यकता है।

प्रातःकाल शंख बजने से लेकर रात को सोने तक हमको क्या करना चाहिए वह करें और क्या नहीं करना चाहिए वह नहीं करें। इन निर्देशों का यदि पालन नहीं करते हैं तो क्षत्रिय युवक संघ का शिविर भी कुछ प्रभाव नहीं डाल पाएगा। गफलत का जीवन, लापरवाही का जीवन न तो हमें अपना स्वास्थ्य लाभ दे सकता है और न अपने आपका दर्शन करने के लिये प्रेरित कर सकता है। दुर्योधन अपना स्वयं का वर्णन करते हुए कहता है कि मैं जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए, लेकिन उधर मैं प्रवृत नहीं होता। मूढ होते हुए भी दुर्योधन यह स्वीकार करता है, अपने दर्शन को स्वीकार करता है। जानते हुए भी जो करना चाहिए, वह नहीं करता हूँ और जो नहीं करना चाहिए, उससे निवृत नहीं होता हूँ। वह अपनी कमजोरियों को जानता है और स्वीकार करता है। जो अपनी कमजोरियों को जानता है, अपने रूप का दर्शन करता है, उसका पहला कदम उठना चाहिए कि इन कमजोरियों को दूर करने का प्रयास प्रारम्भ करूं। दुर्योधन तो ऐसा नहीं कर सका लेकिन साधक को ऐसा करना चाहिए। अपना दर्शन करें और जो करना चाहिए वह करें तथा जो नहीं करना चाहिए वह नहीं करें। इस बात को प्रमाणित करने वाला कोई अन्य व्यक्ति नहीं हो सकता। इसका प्रमाण तो हम स्वयं ही हैं। ऐसा यदि हमने नहीं किया है तो आपका घटप्रमुख, आपका शिक्षक, आपका शिविर प्रमुख या आपका संघप्रमुख आपके जीवन के सद् परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकेगा। आपका पूरा सहयोग नहीं है, तो जीवन में परिवर्तन नहीं आएगा।

क्षत्रिय युवक संघ आपको परिवर्तित होते देखना चाहता है। क्योंकि हम समाज से जुड़े हुए व्यक्ति हैं और हमको समाज को राह दिखानी है। समाज अपनी राह भूल चुका है। उसे राह कौन दिखा सकता है? वही जो उस राह को जानता है। हमको समाज को जगाना है, तो वही जगा सकता है जो स्वयं जगा हुआ है। समाज को गिरने से बचाना है, तो कौन बचा सकता है? वही बचा सकता है जो स्वयं गिरता नहीं है। ऐसा हमको बनना है। पर हम यदि पग-पग पर पतित होते हैं तो हमें पता होना चाहिये कि मैं कहाँ पतित हो रहा हूँ। यह मालूम होना साधना की शुरुआत है, प्रारम्भ है। यदि साधना का प्रारम्भ हो जाता है, तो फिर बीज का नाश नहीं होता। यही बीज है कि जो जाना है उसे तुरन्त करना प्रारम्भ कर दें। और जो जाना है कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए, उसको तुरन्त छोड़ दें। क्षत्रिय युवक संघ आज के मंगल प्रभात में यही संदेश हमारे लिये दे रहा है।

संकल्प द्वारा हम कार्यक्षेत्र में अद्‌भुत विजय प्राप्त कर सकते हैं, जब तक विचार के साथ कार्य का समन्वय नहीं होता तब तक विचार केवल पंगु ही रहेगा। संकल्प उत्तम विचारों को कार्य के साथ मिलाकर उस विचार को सार्थक तथा क्रियाशील बनाता है। केवल विचार से कुछ प्राप्त नहीं होता।

– डॉ. रामचरण महेन्द्र

पू. तनसिंहजी की जयन्ती के संदर्भ में

खोये हैं प्रश्न मैंने

– अजीतसिंह धोलेरा

ईश्वर सृजित यह प्रकृति त्रिगुणात्मक है। गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने इसका अनुमोदन करते कहा है–

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। 7-13

(गुणों के कार्यरूप सात्विक राजस् और तामस्–इन) तीनों प्रकार के भावों से यह सारा संसारयुक्त है। तथा,–

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति सम्भवाः। 14-5

सत्त्व गुण, रजोगुण और तमोगुण–ये तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। और भी,–

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।। 18-40

पृथ्वी या आकाश में अथवा देवताओं में तथा इनके सिवाय और कहीं भी ऐसा कोई भी सत्त्व अर्थात् किसी प्रकार के प्राणी नहीं हैं जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों (सत्त्व, रज, तम) गुणों से रहित हो।

मनुष्य प्रकृति का एक अंश या अंग है। अतः वह भी इन तीनों गुणों से बंधा हुआ रहता है। उनमें रजोगुण के कारण आदमी जिज्ञासु होता है। वह सदा पूछता रहता है–यह सृष्टि किसने बनाई? क्यों बनाई? सृष्टि के अरबों–खरबों जीवों का जीवन निश्चित नियमानुसार एक साथ कैसे चलता होगा? सृजक ने सुख के साथ दुख भी क्यों सृजित किया? यदि सारा संसार ईश्वर की ही कृति है तो भिन्नता क्यों दिखती है? आदि–आदि प्रश्न मानव की जिज्ञासा–वृत्ति के परिचायक हैं। जो दिखता है, सुनाई पड़ता है उससे, अर्थात् पंचेन्द्रिय द्वारा जो भी अनुभूत होता है, उससे वह संतुष्ट नहीं रहता। वह और नया, ज्यादा देखने की सुनने की, प्राप्त करने की, बनने की जिज्ञासा रखता है। वह जिज्ञासा मनुष्य को सोचने को, दौड़ते रहने को, परिश्रम करते रहने को, समय व शक्ति का विनियोग करने को बाध्य करती है।

यदि कोई व्यक्ति कुछ भी जानने की चाह नहीं रखता, उसके दिमाग में कोई प्रश्न नहीं उठता तो वह या तो पागल होगा या सिद्ध–योगी होगा।

समाज में पागल लोग बहुत कम होते हैं। उनका रजोगुण विक्षिप्त हुआ होता है। वह जो भी सुनता है या देखता है, उसको समझने की कोशिश नहीं करता। उसके विक्षिप्त दिमाग में कोई प्रश्न नहीं उठते।

दूसरी ओर पूर्णत्व को प्राप्त योगी, जो समाज में इने–गिने ही होते हैं, वे भी जो कुछ दिखता है, सुनाई देता है उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं करते। वे प्रश्न नहीं करते। विश्व में जो भी हलचल होती रहती है, वह क्यों होती है, कौन करता है आदि की जिज्ञासा वे नहीं रखते क्योंकि प्रश्न उठा करते हैं दिमाग से और ऐसे सिद्ध योगियों का दिमाग हृदय में निरुद्ध हो गया होता है। गीता में कहा है,–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। 8-12

अर्थात् सभी इन्द्रियों के द्वार रोककर मन को हृदय में स्थिर करके......। और हृदय में तो ईश्वर रहते हैं–

ईश्वर : सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। 18-61

–अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में रहते हैं। और ईश्वर के लिये कोई प्रश्न ही नहीं है, न जिज्ञासा है, क्योंकि उनके द्वारा ही तो सृष्ट है, उनका ही तो निर्माण है सब।

ऐसे स्वल्प संख्यक पागलों व योगियों को छोड़कर बाकी के सभी आम लोग जिज्ञासु होते हैं। वे प्रश्न पूछते हैं। गीता में अर्जुन ने कितने प्रश्न पूछे थे। पूछना ही चाहिए। साधक की यह प्रारम्भिक अवस्था है। उसका रजोगुण बलवान है। रजोगुण से प्रेरित व्यक्ति बहुत कुछ जानने की चाह रखता है। अर्जुन के प्रश्नों का अन्त नहीं। एक प्रश्न का उत्तर मिला, सुना न सुना और दूसरे कई प्रश्न उभर आते हैं।

वास्तविकता के साथ करुणा यह है कि जो बहुत प्रश्न पूछता है, उसको शायद ही मिले हुए उत्तर से संतोष होगा, क्योंकि जब उत्तर दिया जाता है, उसीसमय जिज्ञासु के मन में नए प्रश्नों का कोलाहल मचा रहता है। उत्तर कौन सुने? और आश्चर्य की बात यह है कि ज्यों ही रजोगुण शांत हो गया, सारी जिज्ञासाएँ मर जाएंगी। सभी प्रश्न खो जाएंगे।

जैसे पीछे बताया है कि प्रश्न या तो पागल नहीं पूछता या सिद्धि प्राप्त महात्मा। पूज्य तनसिंहजी दुनिया की भाषा में पागल नहीं थे। पर वे पागल थे जरूर। एक अनूठे प्रकार के पागलपन को स्वीकार करते हुए आप श्री ने गाया है-

पागल बन जग बन्धन तोड़े कूद पड़ा मझधार।

याद रहे, ऐसे पूर्णता को प्राप्त पागल ही इतिहास के निर्माता हैं।

आदिकाल से बनता जा रहा, लिखा जा रहा, चर्चित होता जा रहा, भारत के अर्थात् क्षत्रिय के अद्वितीय इतिहास में पूज्य तनसिंहजी ने एक अविस्मरणीय, प्रेरक व अमूल्य प्रकरण जोड़ दिया है जिसका शीर्षक है- श्री क्षत्रिय युवक संघ।

पूज्यश्री ने कई प्रेरक सहगायन लिखे हैं। उनमें से एक का शीर्षक है-***खोये हैं प्रश्न मैंने-।*** यह और अन्य सहगीत पूज्यश्री की किसी बुद्धि के खेल नहीं हैं। वे उनके दिमाग से निसृत नहीं हुए हैं। वे तो आपश्री की अन्त:स्थिति के द्योतक हैं। परम तत्त्व प्राप्त पागल थे पूज्य तनसिंहजी। उनका रजोगुण शान्त हो गया था। उनके मन में कोई प्रश्न नहीं उठते थे क्योंकि मन ही नहीं रहा था।

पूज्यश्री ने शायद मन को कहा होगा-'बहुत नचाया तुमने मुझे! तुमने जो कहा, मैंने सुना, तुमने जो चाहा, मैंने किया। अब क्षमा करो। अब तुम सो जाओ, खो जाओ। अब मैं तुम्हारी एक भी बात सुनूंगा नहीं, तुम जो कहते हो, वैसा करूंगा नहीं।' मन बेचारा क्या करे? प्रारम्भ में तो मन ने पूज्यश्री का कहा न मानने के लिये हल्ला-गुल्ला मचाया होगा। पर जब उसकी एक भी नहीं चली होगी तब विवश होकर सो गया होगा, खो गया होगा। मन का शयन-गृह है हृदय। उसके खो जाने की स्थली है हृदय। मन सो गया, खो गया। अब कोई प्रश्न नहीं। तर्क-वितर्क (ज्यादा तो कुतर्क) मन ही तो करता है। प्राश्निक (पूछने वाले) को बेचैन बनाते रहता है। पूज्यश्री की अब सारी बेचैनियाँ खत्म हो गई।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः। गीता-3/42

मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे वह तत्त्व है जो हमारा ही स्वरूप है।

नदी का मूल स्वरूप समुद्र है। जब तक वह अपने मूल स्वरूप से, समुद्र से अलग है, तब तक वह नदी है, उछलती-उमड़ती बहती रहती है। पर ज्यों ही समुद्र में मिल गई, सभी उछल-कूद बन्द। अब नदी, नदी ही नहीं रही।

वैसे ही हृदय स्थित मन अब मन नहीं रहता, ईश्वर स्वरूप बन जाता है। उस स्थिति को शास्त्रों में सारूप्य मोक्ष कहा है। ऐसे मोक्ष प्राप्त पूज्यश्री हृत्पुरुष, हृदिस्थ, हृदिष्ठिर बन गये थे।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसी स्थिति आए, ऐसी अभीप्सा जगनी चाहिए। ऐसा होने पर सारे प्रश्न खो जाते हैं। जिज्ञासाएँ तिरोहित हो जाती हैं। सारी भागदौड़ खत्म हो जाती हैं। व्यक्ति त्रिगुणातीत बन जाता है। श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को तीनों गुणों से ऊपर उठने को कहा था-

निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। 2/45

अर्जुन तुम त्रिगुणातीत बन जाओ।

मगर अर्जुन, मतलब मैं और आप, यों ही थोड़े मान जाने वाले हैं? हमारा रजोगुण हम को ऐसा करने नहीं देगा। हम प्रश्न करते रहेंगे, जिज्ञासा जताते रहेंगे। हाँ, यह बात अलग है कि जो प्रश्न पूछना चाहिए, जिस बात की जिज्ञासा करनी चाहिए, वह शायद, शायद ही क्यों, पूर्णरूप से करना चूक जाते हैं।

अर्जुन ने एक बहुमूल्य और अपने आप में पूर्ण प्रश्न पूछा था,-

किं तद ब्रह्म- 8/1

(शेष पृष्ठ 31 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्य श्री तनसिंहजी का अवतरण ऐसे समय में हुआ जब क्षत्रिय समाज अपनी विशिष्ठता खो तमोगुण से आक्रान्त था। क्षत्रिय समाज की संजीवनी शक्ति क्षात्रशक्ति है जिसे वह विस्मृत कर चुका था और वह पथ विचलित व धर्मच्युत होकर गर्त में धंसता जा रहा था। पूज्य श्री तनसिंहजी से समाज की यह दुर्गति देखी नहीं गई। अपने समाज को दुर्दिनों से गुजरते देख वे व्यथित हो उठे।

पीड़ित समाज को देख उनमें एक संकल्प जगा कि अब यह मेरा जीवन, मेरा नहीं, समाज के लिये है और समाज के ही काम आये। मैं अपने समाज के लिये हर संभव जो भी बनेगा करूंगा। कल नहीं, आज नहीं, अभी से इस काम में जुट जाऊँगा और अपने समाज की सेवा-सुश्रूषा में वे तत्काल जुट गये। उनके लिये सब कुछ उनका समाज था इसलिये अपनापन खो सदा-सदा के लिये समाज के बन गये, समाज को समर्पित हो गये।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-''मेरे समाज! तुम्हारी चरण वन्दना कर मैं तुम पर कोई उपकार नहीं कर रहा हूँ-मैं तो कृतार्थ होना चाहता हूँ। मेरा विद्याध्ययन, विवाह, नौकरी, कुटुम्ब पालन और जीवन के समस्त व्यापार केवल इसी लक्ष्य की ओर प्रेरित हैं। मैं तो सर्वात्मना तुम्हारी शरण में हूँ।''

एक बच्चे के लिये माँ क्या होती है, उसके जीवन में माँ की क्या महत्ता होती है, वही बात पूज्य श्री तनसिंहजी के जीवन में समाज की थी। वे अपने समाज में माँ भगवती के दर्शन करते थे। अपने समाज को माँ भगवती का स्वरूप समझकर उसकी सेवा, सुश्रूषा व अर्चना में लग गये। उनके लिये समाज क्या था, उनके जीवन में समाज की क्या महत्ता थी, इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-''मेरे मन में तुम्हारे लिये क्या है, मेरे सपनों में तुम्हारा क्या स्थान है यह तो तुम्हीं जानते हो या मैं जानता हूँ।'' यह माँ व पुत्र के बीच के सम्बन्धों की बात है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, यह तो अनुभव करने की बात है। किसी के मन में राम बस गया, किसी के मन में ओम, किसी के मन में कृष्ण बस गया तो किसी के मन में शिव। इसी तरह पूज्य श्री तनसिंहजी के मन में अपना समाज बसा हुआ था। एक बालक के मन में, उसके रोम-रोम में माँ रमी रहती है उसी तरह पूज्य श्री के दिल, दिमाग व मन में माँ भगवती स्वरूपा समाज बसा हुआ था, रमण कर रहा था। वे दिन-रात अपने समाज को ही जपते रहते थे, उनके स्मरण में ही सदैव समाज बना रहता था। उनके लिये सब कुछ अपना समाज था। इसलिये उन्होंने यह तय किया कि अब मेरा यह जीवन समाज के लिये है। अब में जीऊँगा केवल अपने समाज के लिये जिऊँगा, समाज के हित में ही जिऊँगा।

समाज से पूज्य श्री तनसिंहजी का अगाध प्रेम व गहरा सम्बन्ध था इसलिये उन्होंने कहा-''तुम्हारा शत्रु मेरा जानी दुश्मन है और तुम्हारा सेवक मेरे माता-पिता, बन्धु, सखा और सर्वस्व है। तुमसे जो उदासीन है उससे मैं बात करना भी पसन्द नहीं करता। मैं भी उससे उदासीन हूँ। लोग कहते हैं, मैं मिलनसार नहीं हूँ, सामान्य शिष्टाचार से रहित अत्यन्त और ऊबा देने वाला गूंगा हूँ, पर उनका उत्तर तुम जानते हो। तुम जानते हो तुम्हारा शत्रु मेरा शत्रु है। इसलिए ऐसे शत्रु से मिलनसार होना असम्भव है। उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध क्यों हो? पर क्या तुम यह नहीं जानते कि जो तुम्हारा सेवक है, उसे देखकर मेरा रोम-रोम कितनी प्रफुल्लता अनुभव करता है उनके कुशल क्षेम पूछने और गप्पें लड़ाने में नींद को भी हरा देता हूँ। क्या मैं बोलता नहीं हूँ? किसी को बारी ही नहीं आने देता, अपना सब कुछ, अन्तर

का समस्त सार उनके सामने बड़े मनोयोग से रखता हूँ, जो तुम्हारे सेवक हैं। क्योंकि वे ही तो मेरा सर्वस्व हैं। मेरी विनोद प्रियता भी केवल उन्हीं के लिये है। तुम्हारे प्रति उदासीन से मैं भी उदासीन हूँ। वहाँ वचोगुप्ति द्वारा प्राणशक्ति का संरक्षण करता हूँ। भरी सभाओं में बैठकर भी तेरा ही मनन करता हूँ। तेरा भक्त मेरा प्रभु है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी अपने समाज बन्धुओं व सहयोगियों से भी यही अपेक्षा करते थे कि वे उन्हीं की तरह अपने जीवन को समाज की सेवा में समर्पित कर दें। पूज्यश्री ने कहा-''मैंने अपने साथियों और सहयोगियों को भी अनेक बार समझाया है कि तुम मुझसे जो वस्तु चाहते हो, वह तुम्हें मिलेगी, बदले में मैं उनसे जो वस्तु चाहता हूँ वह मुझे मिले। मैं उनसे केवल एक ही वस्तु चाहता हूँ कि वे तुम्हारे लिये अपने जीवन के अन्तिम दिन तक, अपनी शक्ति की अन्तिम तड़फ तक, अपने विचारों की अन्तिम मान्यता तक और अपनी भौतिक उपलब्धियों के अन्तिम संचय तक, वे तुम्हारी और केवल तुम्हारी सेवा के लिये कृत प्रयत्न हों। जिन्होंने इस रहस्य को समझा, वे मेरे शत्रु और विरोधी होकर भी मित्र और आत्मीय से अधिक प्रिय हैं और जो मित्र व बन्धु का दावा करने वाले होकर भी इस रहस्य से अनभिज्ञ हैं, वे मेरी शक्तियों के भक्षक, मेरी प्राण शक्ति को नष्ट करने वाले मेरे छिपे हुए शत्रु हैं।''

समाज के अभाव में पूज्य श्री तनसिंहजी का जीवन सारहीन व सूना-सूना था, वे अपूर्ण थे। समाज ही उनके लिये सर्वस्व था इसलिये उन्होंने अपने समाज के लिये कहा-''तुम मेरी क्रीड़ास्थली के मनोरम क्षेत्र ही नहीं, मेरी प्रेरणा के केन्द्र और मेरी धमनियों के पवित्र और ऊष्ण रक्त हो। तुम्हारी हेय अवस्था को भी मैं श्रद्धा से ही देखा करता हूँ। मेरा संपूर्ण जीवन जिस दिशा की ओर जा रहा है, उस दिशा के तुम अन्तिम दिग्गज हो।''

आज हमारी जो आन-बान व आबरू है वह अपने समाज के कारण ही है इसलिये हमें अपने समाज के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। आज हमारी जो शान व इज्जत देश-विदेश में बनी है, वह अपने समाज के कारण ही बनी है। पूज्यश्री तनसिंहजी इस बात को भली प्रकार जानते थे, अनुभव करते थे इसलिये उन्होंने अपने समाज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा-

''मैं जो कुछ हूँ, तुम्हारे ही भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक भोजन को खाकर जीवित हूँ। मेरे विचारों का एक-एक स्वर तेरी ही साधना के वाद्य यंत्रों की झन्कार है। मेरी मान्यताएँ तेरी चरण सेवा की अनुभूतियों का गाढा सार है। तुम मेरे विचार जगत के सर्वस्व हो। मेरे हृदय की समस्त संवेदनाओं की एक-एक लहर तेरे प्रति समर्पण की मधुरतम प्रतिध्वनि है। संसार में वितरित मेरा प्रेम तेरे ही उद्‌गम से निसृत तरल कृतज्ञता का प्रेरणास्पद रस है। तुम मेरे हृदय जगत में भी बादल की तरह सदैव छाये रहते हो। मेरी समस्त शक्तियों का एक-एक अणु तुम्हारी ही संजीवनी शक्ति के भण्डार का दान है। कार्यक्षेत्र में की गई मेरी समस्त चेष्टाओं के तुम्हीं एकमात्र कारण स्वरूप हो। तुम मेरे कर्म जगत के वह दैदीप्यमान सूर्य हो, जिसके प्रकाश के अभाव में मैं जीवन की कोई राह ढूँढ नहीं सकता।''

पूज्य श्री तनसिंहजी के जीवन में समाज का क्या स्थान है, उनके जीवन में समाज का क्या महत्त्व है, इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ने समाज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा-''बचपन के उन बाल-सुलभ पवित्र दिनों में जब मुझे पहले पहल तुम्हारी गरिमा का दर्शन हुआ उस समय मैंने समझना सीखा ही था और उस समझ में सबसे पहले तुम्हारा महत्त्व ऐसा जमकर बैठ गया कि आज प्रयत्न करने पर भी निकाल नहीं सकता। मेरे भूले-भटके सपनों के तुम प्रकाश स्तम्भ बन गये। मेरे उपेक्षित और सार रहित जीवन की तुम आशापूर्ण मंजिल बन गए। इस मंजिल पर मेरे यह पैर थक जायेंगे, पर मैं नहीं थकूँगा, मेरी कल्पनाएँ और स्वप्न थक जायेंगे, पर मैं नहीं थकूंगा, मेरा जीवन थक जाएगा, पर मेरी उमंग कभी नहीं थकेगी। आज मेरे इस जीवन में कोई धन नहीं रहा, केवल तेरे जीवन का धन ही मेरे जीवन का धन है। तेरा

सम्मान ही मेरी लज्जा है, तेरा गुणगान ही मेरा अनुपम पेय है, जिसे पीकर मैं शहंशाह बना फिरता हूँ। तेरी व्यथा ही मेरी आँखों के बहुमूल्य आँसू हैं। तेरा यह गौरवपूर्ण इतिहास ही मेरी खुराक है, जिसे खाकर मेरा जीवन स्पन्दित होता है। जब तू मुस्कराता है, तो मेरी कुटिया में दिवाली जगमगा उठती है। तू जब कराहता है, तो मेरे सर्वस्व की होली धधक उठती है। तू क्रोधित होता है, तब मेरी दुनिया पर बिजलियाँ कड़क उठती हैं। तेरा आनन्द मेरी बसन्त ऋतु है। तेरा प्यार मेरे जीवन की हरियाली है। तेरी निराशा मेरे सपनों पर गुजरने वाला बर्फीला तूफान है। तुम समुद्र और मैं तुम्हारी ओर उछलता आने वाला एक नाला हूँ। तुम मेरे सर्वस्व हो और मैं तुम्हारे चरणों की कृपा का निष्काम उपासक हूँ।''

पूज्य श्री तनसिंहजी के जीवन में समाज के सिवाय और कुछ नहीं था। उनके लिये उनका समाज ही उनके जीवन में सर्वोपरि था, अति महत्त्वपूर्ण था, इसलिए वे समाज की प्रसन्नता के लिये उनके जो भी स्वप्न थे, उन्हें पूरा करने के लिये पूर्ण मनोयोग से समाज की सेवा, सुश्रूषा में लग गये और उन्होंने समाज की इस सेवा-सुश्रूषा को समाज की अर्चना व पूजा माना। उन्होंने समाज से कहा-''तुम्हारी सेवा का अर्थ है, तुम्हारी और केवल तुम्हारी सेवा।''

पूज्य श्री ने आगे कहा-''मेरे समाज! तुम्हें कब प्रसन्नता होगी-मैं नहीं जानता। तुम्हारे स्वप्न कब पूरे होंगे-यह भी नहीं जानता। मैं तो केवल एक ही चीज जानता हूँ, जब तक तू प्रसन्न नहीं है, मुझे रंग रेलियाँ नहीं भाती। तू सुखी होगा, उसी दिन मैं भोग भोगूंगा। तू प्रसन्न होगा, उस दिन मैं अपने पैरों में घुंघरू बाँधकर राज मार्गों पर लोकलाज छोड़कर नाचता फिरूंगा। जिस दिन तुम्हारे स्वप्न पूरे होंगे, उस दिन मैं अपने स्वप्नों में रंग भरूंगा। जिस दिन तू समृद्ध और धनी बना, उस दिन मैंने अपने आपको किसी के सामने भिखारी होने का परिचय दिया, तो लाखों बार लानत है-मुझ पर। जब तक तुझे धन की आवश्यकता रहेगी, तब तक मेरा सभी धन तेरा धन है और इसीलिए मैं तब तक भिखारी हूँ।''

सृजन के काम में जल्दबाजी नहीं, धैर्य की जरूरत है। कुछ लोग रातों-रात परिवर्तन देखना चाहते हैं जो कभी संभव नहीं लगता, ऐसा परिवर्तन कभी फलदायी नहीं हो सकता। पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''कुछ लोग क्रांतिकारी परिवर्तन चाहते हैं। वे सहज विकास के मार्ग में दीर्घसूत्रता और अनावश्यक संशयी मनोवृति का दर्शन करते हैं। वे चाहते हैं रातोंरात परिवर्तन आए और सदैव आँकड़ों की भाषा में ही बात किया करते हैं। पर तुम्हीं ने मुझे बताया था, कि तुम एक जीवित इकाई हो। इस जीवित इकाई का शल्य क्रिया द्वारा स्वास्थ्य लाभ नहीं हो सकता, केवल रोग का निदान हो सकता है। स्वास्थ्य लाभ के लिये तो प्रतीक्षा और पथ्य दोनों चाहिये। इसीलिए मेरे समाज! मैं तोड़-फोड़ की नीति में विश्वास नहीं करता। मैं तुम्हें शारीरिक दृष्टि से बलवान बनाने की अपेक्षा मानसिक दृष्टि से बलवान बनाने की आवश्यकता को अधिक अनुभव करता हूँ, और तुम्हारी मानसिक शक्ति के संचय का अर्थ है-हम स्वयं मनोबल का संग्रह करें। क्योंकि, मनोबल ही शारीरिक बल का जन्मदाता है। मन की निराशा में उस पर किए गये उपचारों की न्यूनता को देखता हूँ, तो वहाँ भी तोड़-फोड़ की अपेक्षा आध्यात्मिक बल के सृजन की आवश्यकता अनुभव करता हूँ, क्योंकि आध्यात्मिक बल ही मनोबल का सृष्टा है। आध्यात्मिक साधना तो नि:संदेह धैर्य एवं विकास का मार्ग है, उसका दृष्टिकोण सृजनात्मक है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने यह अनुभव किया कि यदि मैं समाज के लिये कुछ करना चाहता हूँ तो मुझे भौतिक, मानसिक व आध्यात्मिक बल को अपने में सृजित करना होगा, बिना इस बल (शक्ति) के जो मैं करना चाहता हूँ, सम्भव नहीं है इसलिए उन्होंने जग जननी माँ भगवती के दरबार में जाने का दृढ़ निश्चय किया क्योंकि यह माँ की कृपा से ही सम्भव था।

(क्रमश:)

गतांक से आगे

आध्यात्मिक रूपान्तरण

– स्वामी यतीश्वरानन्द

परिवर्तन की मुख्य बाधा–अज्ञान :

यह अज्ञान की बाधा क्या है? मनोविज्ञान हमें सिखाता है कि अचेतन मन की गहराईयों में पड़े सूक्ष्म संस्कारों, प्रवृत्तियों, इच्छाओं और वासनाओं का हमारे चेतन जीवन पर महान् प्रभाव पड़ता है। ये सूक्ष्म शरीर–मनोमय भावनात्मक शरीर–में रहते हैं और स्थूल शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। अवचेतन मन के नियंत्रण का अर्थ सूक्ष्म भावनात्मक शक्तियों, इच्छाओं और वासनाओं को निम्न–स्तरों पर अभिव्यक्त नहीं होने देना है। उन्हें उच्चतर स्तर पर अभिव्यक्त करना चाहिए। उन्हें शुद्ध तथा उनका उदात्तीकरण करके समाज और व्यक्ति के कल्याण के लिये उनका उपयोग किया जाना चाहिए।

आध्यात्मिक दृष्टि से सभी सूक्ष्म प्रवृत्तियों और संस्कारों को आध्यात्मिक दिशा प्रदान की जानी चाहिए। आदतों और प्रवृत्तियों को उनकी कारणावस्था में पर्यवसित कर मूल में ही नियन्त्रित करना चाहिए। बाद में उनकी कारणावस्था का अतिक्रमण करना चाहिए।

अहंकार से राग–द्वेष उत्पन्न होते हैं। अहंकार अज्ञान से पैदा होता है। केवल आत्मसाक्षात्कार अथवा अन्तर्यामी परमात्मा के साक्षात्कार से ही इच्छाओं के बीज भस्म हो सकते हैं, तथा आत्मा अपनी नैसर्गिक पवित्रता, मुक्ति और शान्ति प्राप्त कर सकती है। एक गौण उपनिषद् में कहा गया है : ''मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।'' अर्थात् मानवों का मन ही उनके बन्धन और मोक्ष का कारण होता है। स्थूल पदार्थों के प्रति मन की आसक्ति का परिणाम बन्धन है। जब मन इस आसक्ति से रहित होता है, तब आत्मा उस मुक्ति को पुन: प्राप्त कर लेती है, जो हम सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है।

हमारी समस्त प्रेरणाओं, वासनाओं और इच्छाओं के पीछे आत्मा की अनन्त जीवन, पूर्ण ज्ञान और चिर आनन्द की इच्छा विद्यमान है। यह इच्छा उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति होने पर, उस सच्चिदानन्द के साक्षात्कार पर पूर्ण होती है, जो हमारी व्यक्तिगत चेतना को व्याप्त और परिवेष्ठित किए हुए हम सभी में विद्यमान है। अज्ञान और अहंकार के कारण ही हम अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूल जाते हैं। आत्मसाक्षात्कार के द्वारा हमारे मुक्त–स्वरूप की पुन: उपलब्धि हो सकती है। आध्यात्मिक जीवन का यही खुला रहस्य है।

यह एक सामान्य अनुभव है कि गलत प्रकार के विचार और भावनाएँ हमारे मन और देह को प्रभावित करते हैं। बहुत से सत्यान्वेषी चिकित्सक और मनोविशेषज्ञ हमें यह तथ्य बता रहे हैं कि अज्ञान से उत्पन्न गलत दृष्टिकोण तथा भावनाओं के कारण बहुत से शारीरिक व मानसिक रोग होते हैं, जिन्हें बहुत हद तक रोका या निवारित किया जा सकता है। एक बुद्धिमान् चिकित्सक सर विलियम ओस्लर ने कहा है कि क्षय रोगी का भविष्य उसके सीने में क्या है, इसके बदले इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि उसके मस्तिक में क्या है। हमारे बाह्य आचरण के बदले हमारे विचारों और भावनाओं का अधिक महत्त्व है।

प्रत्येक व्यक्ति बदल सकता है :

एक सांसारिक व्यक्ति भी बदल सकता है, यदि वह अपनी सांसारिकता तथा मन में बनी समस्त ग्रन्थियों को त्यागने के लिये तैयार हो; अन्यथा नहीं। उत्साहहीन धार्मिकता पर्याप्त नहीं है। लंगर डाली नौका आगे नहीं बढ़ सकती। हमारी ग्रन्थियाँ सांसारिक जीवन के साथ हमारे लंगर के समान है। पहले लंगर उठाना पड़ेगा। हमें अपनी ग्रन्थियों को काटना होगा, चाहे यह कितना ही कष्टप्रद क्यों न हो। उसके बाद हमें अपनी जीवन नौका को तेजी से खेकर गँवाए समय की भरपाई करना चाहिए। जब तक हम हमारे गहरे बद्धमूल संस्कारों का समूल उच्छेद नहीं करते, तब तक हम आध्यात्मिक बनने

की आशा नहीं कर सकते। आध्यात्मिक शुद्धिकरण के पहले नैतिक शुद्धिकरण होना चाहिए।

बहुत से दक्ष मनोविज्ञों का कथन है कि अन्तर्द्वन्द्व, अनभिव्यक्ति या निरुद्ध क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, भय तथा अन्य नकारात्मक भावनाएँ, गर्दन का दर्द, पेट में छाला, मधुमेह हृदयरोग तथा मनोरोग या 'न्यूरोसिस' नामक अन्य रोगों का कारण हो सकते हैं। वे हमें बताते हैं कि किस प्रकार भावनाओं के उदात्तीकरण से न्यूरोसिस की प्रकृति में परिवर्तन आ सकता है, तथा रोगी का बाह्य जीवन बदल सकता है।

स्वयं के लिये सोचना सीखने से, जीवन की समस्याओं का सामना करना सीखने से, तथा स्वास्थ्यकर तरीके से जीवन को सुनियोजित करने से वर्षों तक पंगु रहने के बाद पुनः स्वस्थ होने वाले लोगों की आश्चर्यजनक घटनाएँ पाई जाती हैं। एक आधुनिक मनोविज्ञ का यह स्पष्ट कथन उत्साहवर्धक है : ''मानव व्यक्तित्व परिवर्तित हो सकता है। केवल एक छोटा बालक ही आनम्य या लचीला नहीं है। यावज्जीवन हम सभी में परिवर्तन की, यहाँ तक कि मौलिक परिवर्तन की क्षमता बनी रहती है।''

भारत में एक कहावत है, ''जब तक साँस, तब तक आस।'' हममें से प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिये आशा है, जो आन्तरिक रूप से श्रेष्ठ होना चाहता है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण सभी को आशा दिलाते हुए कहते हैं, ''यदि तुम बहुत बड़े दुराचारी भी होओ, तो भी ज्ञान नौका से सभी पापों को पार करके अशुभ से उत्तीर्ण हो सकते हो।'' आत्मज्ञान एक धधकती हुई अग्नि के समान है, जो समस्त बुराईयों को भस्म करके आत्मा के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है, जो आत्मा सभी के हृदय में विद्यमान है, भले ही हमें यह पता हो या नहीं।

हिन्दू ऋषिगण अपने व्यापक अनुभवों के आधार पर युगों से हमें यह बताते आए हैं कि आध्यात्मिक चेतना का परिवर्तन कर हम अपने विचारों और भावनाओं में, तथा हमारी देह में भी महान् परिवर्तन ला सकते हैं। अपवित्र मन और अपवित्र सूक्ष्म शरीर ही नहीं, बल्कि पशु-मानव की अपवित्र देह भी, पवित्र सूक्ष्म शरीर और देव मानव की पवित्र स्थूल देह में रूपान्तरित की जा सकती है। देव-मानव का शरीर आध्यात्मिक रीति से संयोजित और भिन्न प्रकार से गठित विशुद्धतर उपादानों से निर्मित होता है, जिससे कि उस शरीर से वह कोई बुरा कार्य नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्ण लोहनिर्मित तलवार का दृष्टान्त देते हैं जो पारस पत्थर के स्पर्श से सोने की हो गयी है। तलवार का आकार बना रहता है, लेकिन सोने की तलवार से कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। तलवार की गुणवत्ता में परिवर्तन की तरह हमारी देह और मन की गुणवत्ता में भी परिवर्तन होता है। योगाभ्यास का यह परिणाम होता है।

मानव स्वभाव और प्रवृत्तियाँ :

आध्यात्मिक जीवन में हमारी जिन सूक्ष्म प्रवृत्तियों और आदतों को जीतना, रूपान्तरित करना तथा अतिक्रमण करना पड़ता है, उनके बारे में विभिन्न मत विद्यमान है। भगवद्गीता में तमस्, रजस् और सत्त्वयुक्त तीन प्रकार के लोगों का वर्णन है। पशु-मानव में तमस् का प्राधान्य होता है, तथा अज्ञान, अन्धकार, प्रमाद और मोह उसके लक्षण हैं। सामान्य मानव को प्रभावित करने वाले वासना तथा चाञ्चल्य और उनके साथ रहने वाले दुःख एवं अशान्ति रजस् के लक्षण हैं। आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति में सत्त्व का प्राधान्य होता है और ज्ञान एवं समत्व उसके लक्षण हैं।

तमोगुणी व्यक्ति अशुचि भक्षण करता है। तामसिक कर्ता अस्थिर या अयुक्त, उद्धत, विषादी, शठ और आलसी होता है। वह अपने समस्त कर्म मोह से तथा परिणाम की चिन्ता किए बिना प्रारम्भ करता है। यदि वह दान करता है, तो गलत पात्र को, गलत देश और समय में अथवा गलत रीति से देता है। यदि वह उपासना करता है, तो वह श्रद्धा और दानरहित होती है। वह अन्धविश्वासी और मोहग्रस्त होता है तथा दूसरों को कष्ट देने के लिये तप करता है।

रजोगुणी व्यक्ति कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और उत्तेजक आहार पसन्द करता है। वह कर्म के प्रति अत्यधिक आसक्त तथा स्वार्थी होता है। अथवा दूसरों तथा दूसरों के स्वार्थ में लिप्त होता है। वह कर्म के फलों के लिये अत्यधिक उद्विग्न होता है, तथा उसके सभी कर्म इच्छाओं तथा अहंकार की तुष्टि के लिये होते हैं। वह लोभी, हिंसक, आसानी से हर्षान्वित अथवा शोकान्वित होने वाला होता है तथा चिन्ता और भय से ग्रस्त होता है। वह अनिच्छा से तथा फलाकांक्षा और प्रत्युपकार के उद्देश्य से दान देता है। वह उपासना भी फलाकांक्षा से या दिखावे के लिये करता है। यदि वह तप करता है, तो वह भी सत्कार-मान-पूजार्थ तथा दम्भपूर्वक होता है।

सत्त्वगुणी अथवा समतायुक्त व्यक्ति आयु, सत्त्व, बल और आरोग्यवर्धक शुद्ध आहार ग्रहण करता है। वह आसक्ति और अहंकार-रहित हो कर्म करता है तथा धृति एवं उत्साहयुक्त एवं सिद्धि-असिद्धि में निर्विकार रहता है। वह मनोयोपूर्वक किन्तु अनासक्त हो फलाकांक्षारहित अथवा प्रतिदान की चिन्ता के बिना कर्म करता है। वह दयापूर्वक, उचित देश और काल के अनुसार ऐसे लोगों को दान करता है, जो उसका प्रतिदान न कर सके। वह तीन प्रकार के तप गहरी श्रद्धा तथा केवल आध्यात्मिक लक्ष्य के लिये करता है। शोच, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक रूप तप कहलाते हैं। अनुद्वेगकर, सत्य और कल्याणकारक वाणी तथा स्वाध्याय उसकी वाणी के तप हैं। वह आध्यात्मिक चिन्तन में रत रहने के कारण प्राय: मौन रहता है। ऐसे मौन का अभ्यास, सौम्यत्व, आत्मविनिग्रह तथा भावसंशुद्धि उसके द्वारा किए गए मानसिक तप हैं।

हमारे स्वभाव और प्रवृत्तियों के निर्माण के विषय में विभिन्न दार्शनिक मतवाद हैं। व्यवहारवादी कहते हैं कि पर्यावरण सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इससे भिन्न अन्तर्निरीक्षणवादी की यह मान्यता है कि सहजात प्रवृत्तियाँ प्राणी में विद्यमान स्वाभाविक प्रेरणाएँ अथवा आवेग हैं, तथा हम पर्यावरण अथवा बाह्य प्रेरणा या उद्दीपन की प्रतिक्रिया के परिणाम मात्र नहीं हैं। प्राणी में परिवर्तित होने की एक स्वत: विद्यमान विकासोन्मुख प्रेरणा, एक जीवन शक्ति रहती है। कुछ मनोविज्ञ और जीवशास्त्री हमारी सहजात प्रवृत्तियों का मूल बाल्यकाल में खोजते हैं, यहाँ तक कि सारा श्रेय वे माता-पिता और पुरखों को देते हैं।

अन्य पाश्चात्य चिन्तकों का विश्वास है कि आकाशीय जीव अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों, इच्छाओं और वासनाओं के साथ मानव-शरीर धारण करते हैं। एक महान क्रम-विकासवादी और डार्विन के समर्थक टॉमस हक्सले का मत था कि प्रत्येक प्राणी अपनी करनी का फल भोगता है, यदि इस जन्म में नहीं तो अनेक जन्मों की शृंखला में किसी-न-किसी में, जिसका यह जन्म नवीनतम है। उनका निष्कर्ष था कि क्रमविकास के सिद्धान्त की तरह पुनर्जन्मवाद भी सत्य पर आधारित है। हम कुछ स्वभावगत प्रवृत्तियों के साथ जन्म ग्रहण करते हैं, इसीलिए प्राणी बाह्य उत्तेजना के प्रति एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करता है।

भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण पुरातन हिन्दू मान्यता बताते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार जीव एक देह में बाल्यकाल, यौवन और वृद्धावस्था से गुजरता है, उसी तरह वह अन्य देह में भी जाता है। जिस प्रकार व्यक्ति पुराने वस्त्र त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, उसी तरह अन्तरात्मा जीर्ण-शरीरों को त्यागकर नया शरीर धारण करती है। लेकिन हमारी प्रकृति व आदतें हमारे साथ जाती हैं। जिन पूर्वजों तक हम अपनी आदतों और स्वभाव का अनुमार्गण करते हैं, वे हमारे अतिरिक्त और कोई नहीं हैं। अपने पूर्वजों को बलि का बकरा बनाने और हमारी बुराईयों के लिये उन्हें दोषी ठहराने के बदले, हमें अपनी वर्तमान स्थिति की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी चाहिए और उसके बाद स्वयं को श्रेष्ठतर दिशा में परिवर्तित करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह सबसे व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

(क्रमश:)

मैं क्षत्राणी

– डॉ. अन्जु

कदम–कदम पर जौहर की ज्वाला में तपती,
मैं कोकिल–कण्ठा मीरां हूँ,
जो कृष्ण–विरह में जलती।
विष के प्याले को भी अमृत मैं करती।
रंग साँवरे के रंग,
भक्ति की निर्मल गंगा बहा,
जन–मन को रस–गागर में डूबा
परम पावन इस धरा को हूँ करती।
मैं क्षत्राणी।
वीर प्रताप और दुर्गादास की जननी
पद्मावती और दुर्गावती की मैं वंशज।
क्षात्र–धर्म की हूँ मैं रक्षक,
जब–जब रजपूती सोई है,
इस धरा में मैंने,
तप–त्याग–तपस्या बोई है।
जब मैं जागी, युग बोल उठा,
अन्याय का सिंहासन डोल उठा।
बहते सुरों की हूँ सरिता।
मैं क्षत्राणी।
नवयुग की हूँ मैं नियन्ता,
जब मैं बोलूं, जब मैं डोलूँ,
सत्ता का सिंहासन हिल जाए,
सुन सिंह गर्जना मेरी,
सोयी मानवता जग जाए।
हर पल, हर क्षण,
कदम–कदम पर
इतिहास नया मैं रचती।
मैं क्षत्राणी।

समाज जागृति की भीख

– नरेन्द्रसिंह जसोल

मैं, शहनशाहों का शहनशाह
न था कभी भिखारी
जब से माँ मेरी रुग्ण हुई
साड़ी फटी–चिथड़े लपेटे
चीत्कार करती दर्द से
अब, बन बैठा हूँ भिखारी
झोली लिए फिरता हूँ घर–घर
लेकिन, यहाँ उडेलता कोई नहीं
साथ व प्रेम के प्याले
कोई कहता, समय नहीं–
बाद में आना
कोई देता दुत्कारें–
वही स्वाद से खाता हूँ
पसीने का पीकर पानी
फिर भरी दोपहर में
एकान्त के चबूतरे पर बैठा
अपने आप पर
अपनी जमात पर
पगला सा खूब हँसता हूँ
खाली हाथ शाम ढले जब लौटता हूँ
माँ की अंधेरी कोठरी में जाता हूँ
चुपचाप पदचाप को भी सुन लेती है
टुकर–टुकर देखती है झोली की ओर
क्या कुछ लेकर आया
मेरे मौन को खूब समझती है
पथराई आँखों से कहती है–
मेरी श्वासों की डोर अभी टूटी नहीं
बेटा! कल फिर जाना।

विचार-सरिता

(नवत्रिंशत् लहरी)

– विचारक

परमात्मा के बारे में मानस में बहुत सुन्दर चौपाई आई है कि-***हरि अनंत हर कथा अनन्ता, कहरि सुनहु बहु भांति जु सन्ता।*** सर्वव्यापी परमात्मा के बारे में उपनिषदों आया-जिसके हजार मुख हैं, हजारों कान व हाथ हैं। समस्त चराचर के रूप में वही तो विद्यमान है। उस अनंत हरि की कथाएँ भी अनंत हैं तथा जिनका गुणगान बहुभांति रूप से सन्तजन करते आए हैं। उस अनंत का कोई आदि व अन्त नहीं कहा जा सकता। अनेक रूपरूपाय में वही परमात्मा ही तो है। वही गगन, धरा, चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रूप में विद्यमान है। वही हरि हमारे इर्द-गिर्द पदार्थ रूप में भी विद्यमान है। इसलिए यहाँ कुछ भी अछूत नहीं। प्रकृति, पुरुष और जल, पुष्पादि में पवित्रता है। अम्बर, दिशा, नीर, वायु और धरा में वही तो धरा हुआ है। ***ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्याम् जगत।*** ईशोपनिषद् का यह उद्घोष हमें यही तो सिखाता है कि जो कुछ भी गोचर व अगोचर है वह सब ईश्वर है। इसलिए हमें समस्त पदार्थों का आदरपूर्वक उपयोग करना चाहिए। ईशोपनिषद् में ही आगे कहा गया है कि ***तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा मा गृधः कस्य स्विधनम्*** अर्थात् वस्तुएँ भोगने के लिये तो हैं पर त्यागपूर्वक भोगने के लिये कहा गया है। पदार्थों पर अधिकार करने की बात नहीं कही गई अपितु उन्हें ईश्वर रूप समझते हुए जीवन निर्वाह हेतु आवश्यकतानुसार काम में लेवें। वस्तु रूप में ईश्वर ही विद्यमान है अत: उन पर गिद्ध दृष्टि रखने का निषेध किया गया है।

हमारी संस्कृति बड़ी महान है। यहाँ नदी, सरोवर व तालाबों के जल में नारायण का निवास माना गया है। अत: उनका सेवन व सम्बोधन भी बड़े आदर के साथ किया जाता है। अखिल ब्रह्माण्ड में चराचरात्मक जगत जो हमें देखने व सुनने में आ रहा है, वह सब का सब सर्वाधार, सर्वनियंता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वकल्याणस्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है। जिस प्रकार चीनी से निर्मित खिलौने व मिठाइयों में चीनी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ऐसे ही जगन्नियंता परब्रह्म परमेश्वर ही हमें जगत के रूप में भासित हो रहा है। वेद कहता है-वस्तुत: ये पदार्थ किसी के भी नहीं हैं। मनुष्य भूल से ही इनमें ममता व आसक्ति कर बैठता है। ये सब परमात्म रूप हैं इसलिए इनका सदुपयोग परमात्मा की प्रसन्नता के लिये करना चाहिये।

हमारा स्वरूप अनन्त है इसलिए हमारी मनुष्यता इसी में है कि हम हमारे स्वरूप के अनन्त स्वभाव में उतर जाएँ। अपने होने का हमें गौरव होना चाहिए। हम हमारी निजता में रहें यह गौरव की बात है। जिजीविषा के कारण मनुष्य पदार्थों में आसक्ति करता है और एक भटकाव की स्थिति पैदा हो जाती है। वह अपनी निजता से हटकर देहभाव में आकर जीना चाहता है। सुख की वांसा तो है पर वह पदार्थों के द्वारा है। उसका समस्त उद्यम, पुरुषार्थ इसी में लग जाता है कि मैं जितने अधिक पदार्थों को संचित करूंगा उतना ही अधिक सुखी हो जाऊँगा। वह अपना यश, कीर्ति, सम्मान आदि का आधार पदार्थों को मानता है। इसलिए वह पदार्थप्रिय वृत्ति के कारण समूचा जीवन इन पदार्थों के लिये झोंक देता है। जीवन का लक्ष्य ही जिसका पदार्थ-संचय हो गया हो, वह भला अपने वास्तविक लक्ष्य को कैसे पा सकता है। वह जिस लक्ष्य की पूर्ति हेतु इस लोक में आया था वह तो पूरा होता नहीं और वह समूची धरा-सम्पत्ति को छोड़कर रीता ही चल देता है। उसे ज्ञात ही नहीं रहता कि तृष्णा के कारण वह दिनोंदिन और अधिक गरीब, दीन और कंगला बनता जाता है।

जब सौ रुपये कमाए तो हजार की इच्छा हुई अर्थात् नौ सौ का गरीब हुआ। जब हजार हाथ लगे तो

(शेष पृष्ठ 19 पर)

प्रेरक कथानक

– संकलित

एक बड़े अच्छे महात्मा थे। परमहंस स्वरूप में थे। टाट और ठाट में उन्हें कोई अन्तर नहीं था। अपने भजन की मुद्रा में विचरण किया करते थे। कभी मुट्ठीभर चना तो कभी घी घना। प्राय: स्वभाव से ही दिगम्बर थे। जब साधना पूर्ण हो चली तब इष्टदेव ने कहा–''कहीं स्थायी रूप से निवास करो।'' किन्तु एकाकी विचरण और भजन में उन महात्मा को मस्ती मिलती थी इसलिए इष्ट की आज्ञा प्रणाम करके टाल देते, बैठे नहीं।

माघ का महीना! कड़ाके की ठंड! विचरणशील महात्मा को कोई व्यवस्था न दीख पड़ी। एक कुम्हार आँवें में से बर्तन निकालकर उसी में दीवाल के सहारे ढेर लगा रहा था। आँवे की विभूति कुछ गरम थी। महात्मा बोले, ''कुम्भकार भाई! हमें रातभर यहाँ ठहरना है। तुम यह स्थान मुझे बैठने के लिये दो'' कुम्भकार ने सादर प्रणाम किया, बोला–''महाराज! मैं इन्हीं बर्तनों से जीविका चलाता हूँ। सभी तरफ बर्तनों का ढेर है। कहीं फूटफाट गये तो मर जाऊँगा। आप क्षमा करें। थोड़ी ही तो जगह है। आप बैठ भी तो नहीं सकेंगे।''

महात्माजी ने कहा,–''हमें सोना नहीं है, केवल बैठकर भजन करेंगे और सवेरे चलते बनेंगे। तुम्हारे ऊपर कोई भार नहीं है।'' महात्मा को बैठाकर कुम्हार बोला,–''देखिएगा महाराज! ख्याल रखियेगा।'' महात्मा बोले,–''तूँ न घबड़ा! कोई नहीं ले जायेगा।'' कुम्हार ने प्रणाम किया और ''आप विश्राम करें''–कहता हुआ घर की ओर चला गया।

महात्मा उस गर्मस्थली में अबाध चिंतन में रत हो गये। रात में दो-तीन बजे सोचा, थोड़ी कमर सीधी कर लें। हाथ-पाँव समेटकर वहीं लेट गये। तुरन्त आँख लग गयी, यद्यपि सोने का अभ्यास नहीं था। स्वप्न दिखाई पड़ा कि वही महात्मा एक सुरम्य स्थान पर बैठे हैं। हजारों लोग दर्शन कर रहे हैं। कुछ-न-कुछ चढ़ा रहे हैं। महात्मा उसे उठाकर बगल की कोठरी में बैठे-बैठे ही फेंकते जा रहे हैं। फेंकते-फेंकते महात्मा थक गये। सोचा, थोड़ा भोजन कर लें। जहाँ भोजन के लिये हाथ बढ़ाया कि एक सेठ थैली अर्पित कर बोला,–''महाराजजी! इसे कहीं परोपकार में लगा दें।'' महात्मा बिगड़ पड़े,–''ऐसी तैसी इन भक्तों की! चाँदी का जूता मार रहे हैं। कहते हैं परोपकार में लगा दें। तुम क्यों नहीं लगा देते? हमें बीच में डाल के फाँसी दिये पड़े हैं। न खाने को समय, न चिंतन को।''–इस प्रकार प्रताड़ित करते हुए उस धन की थैली पर लात मारा। पैर थोड़ा बढ़ गया, जाकर नीचे वाली बड़ी हँड़िया में लगा। जहाँ वह फूटी, नीचे की आड़ हटी तहाँ भड़भड़ करते सभी बर्तन ऊपर से नीचे तक चकनाचूर हो गये।

महात्मा की नींद खुल गयी। पश्चाताप करने लगे–अरे! उस बेचारे ने जगह दिया, भलाई की। उसका इतना बड़ा नुकसान हो गया। गरीब मारा गया। सुबह आएगा तब क्या कहेगा? हम चले जायँ तो बड़ी बदनामी होगी। जब हम बाबा हैं तो इस प्रकार मुँह छिपाकर जाना शोभा नहीं देता। लोग साधुओं को क्या कहेंगे? अवश्य यह कोई मायिक उपद्रव है। इसी उधेड़बुन में रात बीत गयी।

सवेरा हुआ। कुम्हार आया, बोला,–''अरे महाराज! हम कल ही कह रहे थे कि लम्बा-चौड़ा गाँव है, कहीं भी रुक जायँ, हम गरीब को फाँसी न दें। लो, हमारे सभी बर्तन फूट गये। बरस भर की कमाई चौपट हो गयी। अब क्या होगा?'' महात्मा को मौन देखकर कुम्हार निवेदन के स्वर में बोला,–''आप बतावें तो! यह हुआ कैसे?'' महात्मा ने स्वप्न की घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी और बताया कि किस प्रकार पाँव चल गया था। कुम्हार ने सोचा, महात्माओं के स्वप्न व्यर्थ नहीं जाते। लगता है कि ये सिद्धकोटि के महात्मा हैं। पुण्यवान भक्तों

की भीड़ यहाँ अवश्य होगी। लक्ष्मी इन भगवत्स्वरूप की सेवा करना चाहती है। न हो तो इनको यहीं रोक लूँ। कदाचित् हमारी भी कमी पूरी हो जाय और इनकी सेवा करने का सौभाग्य भी मिले। जो चढ़ेगा मैं ले लूँगा। ऐसा निश्चय कर बोला,-''अच्छा तो महाराजजी! जो हुआ सो हुआ। अब आप यहाँ से कहीं न जायें, हमारे ही यहाँ रुकें। मैं आपकी सेवा करूंगा।''

दयावश महात्मा रुक गये। दो महीने वहाँ रहे। वास्तव में वैसी ही भीड़ लगने लगी। कुम्हार को भी बड़ा संतोष मिला। कमी तो कभी की पूरी हो गयी थी। जब महात्मा ने समझ लिया कि अब कुम्हार को कोई अभाव अथवा कष्ट नहीं है, तब एक दिन अकस्मात् अन्यत्र चले गये। इष्ट-आज्ञा से एक स्थान पर निवास करने लगे तथा उसी स्थान से कल्याण का अजस्र स्रोत निकल पड़ा, समष्टि का कल्याण उनसे होने लगा।

✻

पृष्ठ 17 का शेष

विचार-सरिता

दस हजार की इच्छा हुई अर्थात् नौ हजार का कंगला बन बैठा। जब दस हजार हाथ लगे तो एक लाख की माँग हो गई अत: अब निब्बे हजार का गरीब हो गया। जब लाख जुटा लिये तो करोड़ की वांसा जग गई। अत: अब जो पहले नौ सौ का गरीब था अब वह नीनानवें लाख का गरीब है। उसे यह भी पता नहीं कि धन-संचय में जो झूठ, फरेब, कपट आदि करना पड़ा वह तो साथ चलेगा और जिसके लिये झूठ कपट आदि किया वह धन मेरे साथ नहीं चलेगा। सब यहीं से इक्कट्ठा किया और यहाँ का धन यहाँ पर ही रह गया।

जब तक व्यक्ति होश में नहीं आता है, चेत में नहीं आता है तब तक उसकी दरिद्रता मिट नहीं सकती। यदि उसे मालामाल बनना है, धनवान और शहंशाह बनना है तो किसी अध्यात्म-उपदेशक की शरण में जाना होगा। साधन-चतुष्टय करके किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की वाणी का आश्रय लेना पड़ेगा। समर्थ सद्गुरु से उपदेशित श्रवण के बाद मनन व निदिध्यासन को श्रद्धापूर्वक सम्पादित करना होगा तभी जीवन का यथार्थ परिलक्षित होगा। जब तक जिजीविषा है तभी तक व्यक्ति पदार्थों को भोगना चाहता है और संचय की प्रवृत्ति रहती है। रूप, रस, गंधादि जो विषय हैं उनमें आसक्ति का एक ही कारण है कि वे भ्रमात्मक हैं। व्यक्ति को यही भ्रम बना रहता है कि ये पदार्थ ही सुख को देने वाले हैं और इसी भ्रम के कारण वह निशिदिन इनके संचय में ही अपनी प्रारब्ध रूपी पूंजी खर्च करता रहता है। इसी भ्रम के कारण वह सदैव बहिर्मुखी बना रहता है। गुरु के आश्रय के बिना अन्तर्मुखता आ ही नहीं सकती। विवेक, विचार और ज्ञान के अभाव में मनुष्य पाशविक बनकर जीता है। उसमें पतन की संभावना प्रचुर मात्रा में बनी रहती है। जीवन कैसे जीया जाय, यह बहुत कम लोग जान पाते हैं।

जब तक ''तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा'' की व्याख्या हम ठीक से अपने भीतर नहीं उतार पाएंगे तब तक ये पदार्थ प्रसाद रूप में परिवर्तित नहीं हो पाएंगे। मर्यादापूर्वक त्याग की भावना से इन पदार्थों को भगवदीय प्रसाद मानकर उनका उपभोग करें। ये सब ईश्वर रूप या ईश्वर के हैं, इनमें मेरा कुछ नहीं। इन पर अधिकार मानना मेरा अधिकार नहीं। हम विचार करें कि यह हवा जो हमें नि:शुल्क मिल रही है, यह ईश्वर की कृपा का परिणाम है। यह मात्र हवा नहीं हमारे प्राण हैं। इसे दूषित करके हम अपराध कर रहे हैं। जल है वह नारायण है। नीर में नारायण का वास माना गया है अत: हम उसका आदरपूर्वक पान करें।

भारत की संस्कृति बड़ी महान है। यहाँ नदियों को माता कहकर पुकारते हैं। तुलसी को विष्णुप्रिया कहा गया अत: हम उसकी पवित्रता का विशेष ध्यान रखते हैं।माताएँ उसकी दीपदान से पूजा करती हैं। पेड़ों और वनस्पति में भगवान का निवास माना गया है। पीपल में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भावना कराई गई। माताएँ पीपल की पूजा परिदक्षिणा करके अपने अखण्ड सौभाग्य की कामना करती है।

समाज के प्रति युवकों की चेतना

- मूलसिंह चांदेसरा

युवक समाज के कर्णधार होते हैं। समाज का भविष्य उन्हीं पर निर्भर होता है। युवा का जीवन समाज की अमूल्य निधि है। युवा समाज की रीढ है। समाज के भविष्य निर्माण के निर्माता युवा ही बनते हैं। समाज की बागडोर थाम कर समाजसेवी बनते हैं। अतएव युवा क्षत्रिय का जीवन पूर्णतया क्षत्रियोचित संस्कार युक्त एवं अनुशासित होना चाहिए। वे जितने अच्छे संस्कारों से युक्त होंगे, समाज उतना ही गौरवशाली एवं सम्मानीय होगा। यह गौरव और सम्मान समाज को तभी मिल सकता है, जब युवा पीढी उच्छृंखल न बनकर संस्कारी और अनुशासित बनें। युवा अवस्था में प्राप्त संस्कार और आचरण उसके जीवन की नींव की भाँति है। इस अवस्था में युवा जिस प्रकार का आचरण व व्यवहार ग्रहण कर लेता है, वह आचरण और व्यवहार उसके भावी जीवन का अंग बन जाता है। युवा मस्तिष्क पूर्ण परिपक्व नहीं होता इस कारण से उसके मस्तिष्क पर अनुशासनहीनता और संस्कारहीनता का प्रभाव आसानी से पड़ सकता है। इसलिए सावधानी और जागरूकता की पूरी आवश्यकता है। जागरूकता ही युवा पीढ़ी को कुसंस्कारों से दूर सद्-संस्कारों की ओर मोड़कर चरित्रवान जीवन की राह पर ले जा सकती है। समाज चरित्र निर्माण के प्रति युवा अपने दायित्व को समझकर संस्कारित बनें, यह चेतना जगानी आवश्यक है।

आज हमारे समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय है। समाज में एकता, जागरूकता, शिक्षा, कर्तव्यबोध, चेतना, संतोष, आशा एवं नैतिकता आदि का अभाव नजर आता है। स्वार्थ खूब बढा है, अनुत्तरदायित्व फैलता जा रहा है। दिखावा, अन्धविश्वास व अनेक कुरीतियाँ समाज को जकड़े हुए है। ऐसी स्थिति में आज के युवा वर्ग का दायित्व निश्चित ही बढ जाता है।

आज के बिखरते समाज को पुन: व्यवस्थित करने का उत्तरदायित्व युवकों पर ही है। अपने इस अति महत्त्वपूर्ण दायित्व को युवा तभी पूरा कर सकता है जब सबसे पहले वह स्वयं को, अपने आपको सुधारे। स्वयं को शिक्षित करे, सद्संस्कारों को ग्रहण कर चरित्रवान बने। क्षत्रियोचित संस्कारों को विकसित करे तभी समाज की प्रगति में सहायक बन सकता है।

स्वयं को सुधारने पर युवा बड़े से बड़े और कष्टपूर्ण दायित्वों को निभाने के लिये भी तैयार हो जाता है। यह आयु ऊँचे से ऊँचे स्वप्न देखने की भी होती है। युवकों में जोश भी बहुत होता है। उस जोश या उत्साह को रचनात्मक कार्यों में लगाने वाला मार्गदर्शन भी होना चाहिए। पू. तनसिंहजी द्वारा स्थापित संस्था को ऐसे ही उत्साहित क्षत्रिय नौजवानों की आवश्यकता है। क्षत्रिय युवक संघ को समाज प्रगति का बहुत लम्बा रास्ता अभी तय करना है। इसके लिये कर्तव्यपरायण, निस्वार्थ सेवक, विवेकशील एवं उत्साही युवाओं की आवश्यकता है। संघ ऐसे युवाओं के निर्माण में जुटा है। यह समय विश्राम करने या सोने का नहीं है। युवाओं को तो समाज की उन्नति में दिन-रात एक करके जुट जाना चाहिये।

सामाजिक दृष्टि से हमारे समाज में अभी भी अन्धविश्वास, दहेज, टीका प्रथा, मृत्युभोज, छोटा-बड़ा, नारी जाति की उपेक्षा, नशाखोरी आदि अनेक कुरीतियाँ विद्यमान हैं। अत: इन कलंकों को धोने की जिम्मेदारी युवकों को लेकर जुट जाना है। युवक ही त्याग व बलिदान में अग्रणी रहते हैं।

क्षत्रियोचित संस्कारों को व्यावहारिक रूप देकर युवा पीढ़ी समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरा कर सकती है। श्री क्षत्रिय युवक संघ वह जगह है जहाँ क्षत्रियोचित संस्कार-निर्माण की पूरी सुविधा है। इस सुविधा का लाभ उठाकर समाज को गौरवशाली महिमा प्रदान करना युवकों का ही काम है। युवा ही समाज की भावी आशा है। उसी को समाज की अपेक्षाएँ पूरी करनी हैं।

जनक ने कराया अष्टावक्र को ब्रह्म ज्ञान

– संकलित

एक बार मुनि अष्टावक्र राजा जनक की राजसभा में पहुँचे। जनक ने उनका उचित स्वागत-सत्कार किया और एक ऊँचे स्थान पर उन्हें आसन दिया। अष्टावक्र को अब यह अभिमान हो गया था कि मैं तो बहुत बड़ा ब्रह्मवेत्ता हूँ। अहंकारवश उन्होंने राजा जनक से प्रश्न किया-''राजन्! तुम जो अपने आपको विदेह कहते हो, यह तुम्हारा झूठा अभिमान है। अरे, तुम किस प्रकार के विदेह हो, जबकि ठाठदार महलों में रहते हो, सुंदर स्त्रियों और दास-दासियों से सेवा कराते हो, छप्पन प्रकार के उत्तम भोगों को करते हो, कोमल व गुदगुदे गद्दों पर सोते हो। इशारे पर दास-दासियाँ हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। दुनिया भर के राजा तुम्हारे नाम से कांपते हैं। संसार की कोई वस्तु तुम्हारे लिये दुर्लभ नहीं है। इन समस्त भोगों और ऐश्वर्य के बीच रहते हुए, इन्हें भोगते हुए तुम विदेह होने का पाखंड किस प्रकार करते हो? विदेह तो हम हैं। हमने अपनी तमाम इंद्रियों को वश में कर लिया है। हम महीनों और वर्षों तक वृक्ष के पत्ते खाकर अथवा केवल वायु का भक्षण करके, समाधिस्थ होकर ब्रह्म का चिंतन करते हैं, सारी वासनाओं को हमने बलपूर्वक नष्ट कर डाला है और अपने शरीर को सुखाकर हमने कांटे के समान कर लिया है। हमने इतने कष्ट सहे हैं। विदेह हम हैं या तुम?''

अष्टावक्र की बात सुनकर राजा जनक हंसते हुए बोले-''मुनिवर! सब बातों का उत्तर उतावले पन में ही नहीं दिया जा सकता। आप आए हैं तो कुछ दिन अपने इस सेवक के पास ठहरिये, इसका आतिथ्य स्वीकार कीजिए। तब आपको अपने प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे।'' यह कहकर जनक अष्टावक्र को अपने महल में ले आए और उनकी सेवा-सुश्रूपा और आराम की भलीभाँति व्यवस्था कर दी। वह बड़े सुख और आनंद के साथ राजमहल में रहने लगे।

एक दिन राजा जनक ने अपने अनुचर को आज्ञा दी-''जाओ, नगर से किसी ऐसे दीन-दुखी मनुष्य की खोज करके लाओ, जो अपने जीवन से निराश हो चुका हो, आत्मघात तक करने को तैयार हो, जिसका दुनिया में कोई सहारा नहीं, जो सब प्रकार से पतित, कलंकित और अयोग्य हो।''

राजा की आज्ञा पाकर अनुचर चला गया और कुछ दिन बाद एक ऐसे ही व्यक्ति को ढूंढ़कर राजा के सामने प्रस्तुत कर दिया। राजा ने आज्ञा दी-''इस व्यक्ति को आज से हमारे समान ही साधन-सम्पन्न समझा जाए। जिस प्रकार हमारी आज्ञा का पालन होता है, ठीक उसी प्रकार इसकी आज्ञा का पालन किया जाए। जिस प्रकार का ऐश्वर्य और सुख-भोग हमारे लिये उपस्थित है, वैसा ही इस व्यक्ति के लिये भी उपस्थित किया जाए तथा इसकी प्रत्येक उचित और अनुचित आज्ञा का पालन किया जाए, जो कोई भी इस काम में चूक करेगा, उसे प्राण दण्ड दिया जाएगा।''

राजा जनक की इस अद्भुत आज्ञा को सुनकर अष्टावक्र आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने अपने मन में कहा कि राजा लोग भी सनकी हुआ करते हैं, जो उनके मन में तरंग आई, वही कर बैठते हैं। परन्तु उस व्यक्ति के प्रति अष्टावक्र का कौतूहल जरूर बढ़ गया। वे बड़े ध्यान से उसकी दिनचर्या देखने लगे। दर्जनों दास-दासियाँ उसकी सेवा में उपस्थित हो गए और एक बढ़िया-सा महल उसको रहने को दे दिया गया। उस व्यक्ति को संपूर्ण राजसी ठाठ-बाट से सुसज्जित कर दिया गया। वह भूल गया अपने उन दिनों को, जब वह निरीह भिखारी था। अब वह राजा के समान सेवकों पर हुक्म चला रहा था। देखते ही देखते उसका रंग ढंग बदल गया। वह खूब हृष्ट-पुष्ट और सुखी हो गया। अष्टावक्र उसके अन्दर यह परिवर्तन देखते और राजा जनक की मूर्खता पर हंसते थे।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गए। इसी बीच अष्टावक्र ने राजा जनक से कई बार अपने प्रश्नों के उत्तर माँगे, किन्तु राजा हर बार हंसकर उनके प्रश्नों को टाल देते। फिर एक दिन राजा जनक ने अपने एक विश्वसनीय सेवक से उस व्यक्ति का हाल-चाल पूछा। अनुचर ने बताया कि महाराज की आज्ञा का यथावत पालन हो रहा है और वह आदमी बहुत सुखी और संतुष्ट है। तब राजा ने एक नया आदेश दिया कि सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि कल सायंकाल सूर्यास्त से पहले उस व्यक्ति को राजमहल के प्रांगण में सूली पर चढ़ा दिया जाएगा, जो कोई भी उस दृश्य को देखना चाहे, वह उस समय राजमहल में आकर देख सकता है।

राजा की इस विचित्र आज्ञा को सुनकर अष्टावक्र आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने सोचा कि निश्चय ही राजा पागल हो गया है, जो इस प्रकार का भयानक निर्णय कर रहा है। ऐसे राजा के प्रमाद और क्रोध का क्या ठिकाना। इससे तो दूर ही रहना अच्छा है। अब अकारण ही उस बेचारे भिखारी की जान चली जाएगी।

नगर में ढिंढोरा पिटवाया जा रहा था तो उस अभागे ने भी अपने भाग्य के इस फैसले को सुन लिया। सुनते ही वह बौखला उठा और घबराकर कहने लगा-''यह क्या बात है? किसलिए मुझ बेकसूर को सूली पर चढ़ाया जा रहा है? किसलिए मेरे साथ यह अनर्थ किया जा रहा है? यह तो घोर अन्याय है। मुझ गरीब को बिना कोई कारण दंडित किया जा रहा है। मेरी रक्षा होनी चाहिए। यह राज भोग, सुख और ऐश्वर्य मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे भीख मांगकर खाना मंजूर है, मुझे जाने दो।''

लेकिन उसकी यह करुण पुकार व्यर्थ साबित हुई। उस पर कड़ा पहरा लगा दिया गया, परन्तु सब प्रकार के सुख ऐश्वर्य को भोगने की उसकी छूट पहले की भाँति बरकरार रही। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पकवानों से भरे हुए थाल उसके सामने लाए गए। उसने पागलों की तरह उन्हें उठाकर फेंक दिया। स्वच्छ और आरामदायक गद्दे उसे काटने लगे और आपे से बाहर होकर उसने उन्हें फाड़ डाला। दास एवं दासियाँ जब उसकी सेवा के लिये हाजिर हुए, तो उसने उन्हें डांटकर भगा दिया। उसकी दशा उस मछली के समान हो रही थी, जो जीवित ही तवे पर भूनी जा रही हो। वह छटपटा रहा था, चीख और चिल्ला रहा था, दुहाई दे रहा था, किन्तु उसकी चीख-पुकार नक्कार खाने में तूती की आवाज ही प्रतीत हो रही थी।

यह सब देखकर अष्टावक्र ने राजा जनक से कहा-''राजन्, इस गरीब के साथ आप किस प्रकार का खेल खेल रहे हैं? एक निरपराध व्यक्ति को सूली पर चढ़ा देने जैसा काम क्या आपके लिये शोभा देता है?''

अष्टावक्र की बात सुनकर राजा जनक ने कहा-''हे मुनिवर! आप जाकर उसे समझाइए कि वह खाना खाए और आराम से सोए। सूली तो उसे कल संध्या समय में दी जाएगी, फिर अभी से उसे इतनी बेचैनी क्यों है?''

परन्तु अष्टावक्र के वहाँ जाने और उस व्यक्ति को समझाने का कोई लाभ नहीं हुआ। अंत में राजा ने उसे अपने सामने ले आने की आज्ञा दी और उससे कहा कि उसे जो कुछ कहना है, वह कह दे। इस भिखारी ने हाथ जोड़कर कहा-''महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मुझ निरपराध को सूली पर चढ़ाने का आदेश आपने क्यों दिया है? आखिर मेरा अपराध क्या है?''

राजा जनक ने कहा-''तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुम्हें सूली हम अपनी इच्छा से दे रहे हैं।''

भिखारी बोला-''यह तो अन्याय है महाराज! मैं तमाम राजसभा से अपील करता हूँ कि मुझे इस अन्याय से बचाया जाए।''

राजा जनक ने कहा-''इसमें अन्याय क्या है? जब तुम को भीख माँगते हुए राजमहल में बुलाकर समस्त राज ऐश्वर्य सौंप दिया गया तब तो तुमने नहीं पूछा कि मैंने ऐसे कौन-से सत्कर्म किए हैं कि मुझे भिखारी से राजा बनाया जा रहा है। तुम बड़ी मौज-बहार से मग्न हो गए और अपने को राजा ही समझने लगे। तुम्हें स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं आया कि किस पुण्य के बदले में तुम्हें ऐश्वर्य मिला और अब तुम्हें सूली पर चढ़ाया जाने वाला है, तो

तुम कारण पूछते हो। इसका कोई कारण नहीं है। मेरी इच्छा थी, इसलिए मैंने तुम्हें भिखारी से राजा बनाया।

अब मेरी इच्छा है कि तुम्हें सूली पर चढ़ा कर मार दूँ। चले जाओ, तुम्हारी कोई बात नहीं सुनी जाएगी। कल सूर्यास्त के समय तुम्हें सूली पर चढ़ा दिया जाएगा, परन्तु याद रखो कि आज का दिन, बीच की रात और कल का पूरा दिन तुम्हारे लिये है। इससे पहले तुम्हें मारा नहीं जा सकता। इस समय के अंतराल में खूब आनंद का उपभोग करो, खूब मौज करो, खाओ-पीओ और दुनिया का सुख लूटो। कल सायंकाल जब तुम्हारा अंत समय आ पहुँचे तो सूली पर चढ़ जाना।''

राजा जनक ने फिर अष्टावक्र से कहा-''मुनिवर! अब आप ही इस बदनसीब को समझाइए कि यह अभी से क्यों इतना कष्ट उठा रहा है। इससे कहिए कि इस बीच यह खूब ठाठ से रहे, भरपेट स्वादिष्ट भोजन करे और सुख की नींद सोए।''

यह सुनकर अष्टावक्र बोले-''राजन्! यह तुम कैसी बातें कर रहे हो? अरे जिसके सिर पर मौत मंडरा रही हो और जो कल मरने वाला हो, वह कैसे खाए-पीए और कैसे किसी वस्तु का सुख का भोग करे? इसको मैं क्या समझा सकता हूँ।''

''ऋषिवर! मौत तो इसकी कल आने वाली है, अभी तो नहीं आ रही है।'' जनक ने कहा।

अष्टावक्र बोले-''राजन् जिसकी मृत्यु निश्चित है, वह कैसे सुख और ऐश्वर्य का भोग कर सकता है?''

यह सुनकर राजा जनक को हंसी आ गई। वे बोले-''मुनिवर! मैं आपको आपके प्रश्न का उत्तर देता हूँ। जिसकी मृत्यु निश्चित है, वह योग्यता से ही भोगों को उस प्रकार भोग सकता है जैसे कि मैं भोगता हूँ, जिसने जान लिया है कि मृत्यु तो ध्रुव सत्य है। इस भाग्यहीन को इतना भरोसा तो है कि इसकी मृत्यु में अभी दो दिन शेष हैं, किन्तु मुझे तो इतना भी पता नहीं कि किस क्षण मेरी मृत्यु आ जाएगी। फिर भी मैं किसी भी पल मृत्यु को गले लगाने के लिये तैयार हूँ। आप देख ही रहे हैं कि मैं कितना शान्त हूँ। यह धन-सम्पदा, राजमहल, ठाठ-बाट, ऐश्वर्य, दास-दासियाँ, उत्तम से उत्तम भोजन, उत्तम से उत्तम वस्त्र, ये सब छोटे-बड़े मेरी सेवा में समर्पित हैं। मैं इनका अधिपति हूँ, दास नहीं। मृत्यु के पश्चात ये सब मुझसे छूट जाएंगे, इसका मुझे तनिक भी ऐसा मोह नहीं है, जैसा कि इस भाग्यहीन को है, क्योंकि इसे ज्यों ही पता चला कि कल जब वह मर जाएगा तो ये सारी वस्तुएँ इससे छूट जाएंगी, तो वह अशान्त हो गया। वह उन वस्तुओं का दास है। वह उन वस्तुओं का भूखा है वह मृत्यु को सहन नहीं कर सकता। इन सब वस्तुओं का बोझ इसके सिर पर लदा हुआ है, किन्तु मैं शान्त और निश्चित हूँ।

हे ऋषिवर! यही कारण है कि लोग मुझे विदेह कहते हैं। आपने उदाहरण दिया कि आप वृक्ष के पत्ते खाकर अपनी तृप्ति करते हैं। आपने ये भी कहा कि आपने अपनी इन्द्रियों पर पूरी तरह नियंत्रण कर लिया है, क्या यही आपकी तपस्या है? यही आपका वेदेहत्व है? आपने अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण क्यों किया? इसलिए कि आप इसके स्वामी नहीं हैं। इन पर आप का कोई अधिकार नहीं है। कहीं ये आपको धोखा न दे जाएं, आपसे विद्रोह न कर जाएं, कहीं ये आपके साथ कोई घात न कर जाएं, इसीलिए आपने इन्हें बांध कर रखा है। इन्हें इनके विषयों से वंचित कर दिया है। आप जीते जी मृतकवत, हृदय होते भी हृदयहीन, जीवन होते हुए भी जीवनहीन हैं। आपने इस जीवन में अपने आपको नष्ट कर दिया। अब आगे के लिये आपके लिये कौन-सा मार्ग हो सकता है?''

राजा जनक के मुख से ऐसा सारगर्भित उपदेश सुनकर अष्टावक्र कुछ भी उत्तर न दे सके। वे मौन रहकर सिर्फ सोचते ही रह गए। राजा जनक ने उनके मर्मस्थल को छू लिया था। वे जान गए कि राजा जनक सचमुच ही सच्चे ब्रह्मवेत्ता हैं।

अष्टावक्र को इस प्रकार गंभीर मुद्रा में देखकर जनक भी समझ गए कि अष्टावक्र को मेरी कही बातों का मर्म समझ में आ गया है। अगले दिन उन्होंने उस भिखारी को छोड़ देने का ऐलान कर दिया।

उडणा पृथ्वीराज

– हनुवंतसिंह नंगली

उडणा पृथ्वीराज महाराणा कुम्भा के पौत्र और महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र थे। महाराणा रायमल के तीन पुत्र थे जिनमें पृथ्वीराज सबसे बड़े और सांगा सबसे छोटे थे। एक दिन पृथ्वीराज, जयमल और सांगा तीनों भाई एक मंदिर में एक चारणी के पास गये जो भविष्य के बारे में बताती थी। वहाँ उन्होंने चारणी से जाकर पूछा कि भविष्य में चित्तौड़ की राजगद्दी का अधिकारी कौन होगा। इस पर चारणी ने सांगा की तरफ संकेत किया। पृथ्वीराज को यह बात अच्छी नहीं लगी और उसने सांगा पर अपनी तलवार से प्रहार कर दिया। बीच बचाव करने से सांगा बच गया परन्तु एक आँख से नेत्रहीन हो गया। घायल सांगा चतुर्भुजा के मंदिर की तरफ चले गये जहाँ उन्हें बीदा जैतमालोत राठौड़ मिला जो सांगा को अपने घर ले गया। सांगा का पीछा करता हुआ उसका भाई जयमल भी वहाँ आ गया और बीदा से सांगा को सौंपने की बात कही। बीदा ने सांगा को देने से इन्कार कर दिया। बीदा राठौड़ ने सांगा को अपने रक्षकों के साथ मारवाड़ भेज दिया और जयमल से मुकाबला करने ठहर गया। जयमल से मुकाबला करने में बीदा और इसके दो पुत्रों ने सांगा की रक्षार्थ अपने प्राण न्योछावर कर दिये और आत्म बलिदान का ज्वलन्त उदाहरण छोड़ गये। इनके वंशज वर्तमान में केलवा में हैं। सांगा फिर मारवाड़ छोड़कर अजमेर की तरह चले गये। घोड़ा और शस्त्र खरीद कर परमारों की राजधानी श्रीनगर (अजमेर) में राजा कर्मचन्द की सेवा में चले गये।

महाराणा को जब देवी के मंदिर वाली घटना का पता चला तो उन्होंने पृथ्वीराज को सम्मुख आने से मना कर दिया। पृथ्वीराज अपने साथ पांच सवारों को लेकर मेवाड़ छोड़कर गोडवाड की ओर चले गये। इस समय गोडवाड में जंगली जातियों और अरावली के पहाड़ी लोगों का आतंक फैला हुआ था। पृथ्वीराज ने इनको वश में करके गोडवाड में सुशासन स्थापित किया। पृथ्वीराज के पास धन की कमी हुई उसने अपनी अंगूठी एक ओसवाल महाजन के पास गिरवी रख ऋण माँगा। उस महाजन ने पहचान लिया कि यह अंगूठी तो चित्तौड़ के राजकुमार पृथ्वीराज की है। उसने फिर पृथ्वीराज को पूर्ण आर्थिक सहायता दी। पृथ्वीराज ने फिर अपनी चतुराई व शौर्य से मीणों पर कब्जा किया जिन्होंने इस क्षेत्र में आतंक फैला रखा था। पृथ्वीराज ने इसके पश्चात् देसूरी के मादरेचों, गोडवाड के बालेचाओं को वश में किया।

सिरोही के राव लाखा ने ईडर के राव भाण की सहायता से लांछ के सरदार भोज को मार डाला। भोज के पुत्र और पौत्र लांछ छोड़कर कुम्भलगढ पृथ्वीराज के यहाँ चले गये। पृथ्वीराज ने उन्हें चौहानों से देसूरी का ठिकाना छीनने को कहा। पहले तो वे इसके लिये तैयार नहीं हुए पर बाद में पृथ्वीराज के कहने से उन्होंने ऐसा कर लिया। पृथ्वीराज ने देसूरी के 140 गाँवों का पट्टा भोज के पुत्र पौत्रों को दे दिया।

पृथ्वीराज के निष्कासित होने के कारण जयमल ही चित्तौड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी माना जाने लगा, क्योंकि सांगा तो वैसे ही गुप्त तौर पर कहीं दूसरी जगह चला गया था। जयमल ने बदनौर के राव सुरतान की बेटी ताराबाई के गुणों और रूप की प्रशंसा बहुत सुन रखी थी। राव सुरतान अनहलवाड़ा के प्रसिद्ध राजवंश का सौलंकी था। जो चौदहवीं शताब्दी में खिलजी की सेना द्वारा निष्कासित होने के पश्चात मध्य भारत में टोंक टोडा की तरफ आ गया। अफगान लाल खाँ ने सुरतान के भाई श्यामसिंह से टोडा छीन लिया था। सुरतान का भाई श्यामसिंह महाराणा रायमल की शरण में गया। तब महाराणा ने उन्हें बदनौर की जागीर दी। यह तारा बदनौर के ठाकुर सुरतान की पुत्री थी। तारा घुड़सवारी और तीरंदाजी में पूर्णतया निपुण थी। उसका निशाना अचूक

था। जब जयमल का तारा के पास विवाह का संदेश आया तो तारा ने कहलाया कि टोड़ा का उद्धार करो तब विवाह करूंगी। जयमल इस बात के लिये तैयार हो गया पर इससे पहले ही जयमल उसके क्रोधी पिता के साथ की मुठभेड़ में बदनौर से 16 मील पर रतनसिंह सांखला के बरछे से मारा गया।

पृथ्वीराज को जब इस घटना का पता चला तो वह बहुत ही दुखी हुआ। इस समय पृथ्वीराज निष्कासित था और वह मारवाड़ में था। पृथ्वीराज ने फिर अपने पिता की स्वीकृति से तारा के साथ विवाह करना स्वीकार किया। तारा को शर्त पूरी करने का वचन दिया कि वह टोडा का उद्धार करेगा पृथ्वीराज ने तारा के पिता को उसका राज वापिस दिलाया। टोडा को मुक्त कराने के लिये पृथ्वीराज ने अली के शहीद पुत्रों की बरसी का दिन आक्रमण के लिये चुना। पृथ्वीराज 500 चुने हुये वीरों के साथ अपनी स्त्री तारा को साथ ले नियत समय टोडा पहुँचा। तारा अपने काठियावाड़ी घोड़े पर सवार थी तथा तीरकमानों से सुसज्जित थी। पृथ्वीराज, तारा और पृथ्वीराज का हमेशा साथ देने वाला साथी सैंगर सरदार तीनों जब ताजिया चौक में पहुँचा, तब वहाँ पहुँचे। पृथ्वीराज के भाले और तारा के तीर ने ताजिया को नीचे गिरा दिया। तीनों नगर द्वार पर जा पहुँचे। वहाँ उनको एक हाथी ने अपनी सूंड से बाहर जाने से रोका पर तारा ने अपनी तलवार से उसकी सूंड काट डाली। अफगानों से मोर्चा लिया। अफगान मुकाबला नहीं कर सके, जो अफगान नहीं भाग सके वे मारे गये। पृथ्वीराज ने अफगानों से टोडा मुक्त कराया और तारा के पिता को उनकी बपोती में लाकर बसाया। अजमेर के तत्कालीन नवाब मल्लूखाँ ने पृथ्वीराज का सामना करने का विचार किया पर पृथ्वीराज स्वयं ही उस पर आक्रमण करने के लिये अजमेर की ओर रवाना हो गये और प्रात: होते ही उसके डेरों पर हमला कर दिया। अत्यन्त रक्तपात हुआ नवाब की सेना में भगदड़ मच गई अंत में गढ बीटली (तारागढ) में प्रवेश किया। इससे पृथ्वीराज की कीर्ति चारों तरफ फैल गई। उसके नक्कारे पर हजारों राजपूत योद्धा तुरन्त इकट्ठे हो जाते। एक समय पृथ्वीराज ने राणा रायमल को मालवा के सुल्तान के किसी सैनिक अधिकारी से घनिष्ठता से बात करते देखा। पृथ्वीराज राणा जी के इस व्यवहार से बहुत नाराज हुआ। इस पर राणा जी ने व्यंग्य किया कि तुम तो राजाओं को पकड़ने में शक्तिमान हो पर मैं तो अपनी धरती की रक्षा करना चाहता हूँ। पृथ्वीराज यह बात सुनकर रुष्ट होकर चला गया और नीमच पहुँचा। वहाँ पृथ्वीराज ने 5000 सवार इकट्ठे किये। देपालपुर पहुँच कर वहाँ के हाकिम को मारा। इस घटना को सुनकर मालवे का सुल्तान अपनी सेना लेकर चल पड़ा। पृथ्वीराज ने मालवे की सेना पर धावा बोल दिया। पृथ्वीराज ने महमूद को कैद कर लिया उसे अपने साथ एक ऊँट पर बैठाया और सुल्तान को सीधा चित्तौड़ ले आया और राणाजी के सम्मुख उपस्थित कर दिया। सुल्तान द्वारा माफी माँगने व नजर देने पर उसे इज्जत के साथ वापिस अपने स्थान को भेज दिया। पृथ्वीराज फिर अपने कुम्भलगढ को आ गया।

पृथ्वीराज की बुआ गिरनार के जादव (यादव) राजा मांडलिक को ब्याही थी। मांडलिक रानी से अनुचित व्यवहार करने लगा। सूचना मिलने पर पृथ्वीराज अपने साथियों सहित वहाँ गया। मांडलिक को जा पकड़ा उसने दया की भीख माँगी पृथ्वीराज ने सजा के तौर पर उसका थोड़ा-सा दाहिना कान काटा और छोड़ दिया। अपनी बुआ को साथ ले आया। जयमल की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् राणा रायमल ने भाई सूरजमल को जागीर दे दी। पृथ्वीराज को पता चलने पर उसने राणाजी से इसके लिये एतराज किया। राणा जी ने जवाब में कहलाया कि उसने तो अपनी ओर से जागीर दे दी है। तुमसे ली जा सकती है तो वापिस ले लो। इस पर पृथ्वीराज 2000 सवार लेकर भैंसरोड़गढ़ गया। भैंसरोड़गढ़ पर आक्रमण पर पृथ्वीराज ने सूरजमल को भगाकर गढ पर कब्जा कर लिया। इस घटना के पश्चात् सूरजमल मालवा के सुल्तान नसीरूद्दीन खिलजी के पास सहायता के लिये गया। सुल्तान मेवाड़ से वैसे ही जलाभुना बैठा था। सुल्तान ने

मेवाड़ की इस फूट को सुअवसर जान मौके पर फायदा उठाना चाहा और मेवाड़ पर एक बड़ी सेना भेज दी। सादड़ी बाटरड़ा और नाई नीमच तक इस सेना ने अपना अधिकार कर लिया और चित्तौड़ पर अधिकार करने को बढा। महाराणा भी चित्तौड़ से मुकाबले के लिये चले। गम्भीरी नदी पर मुठभेड हुई। महाराणा के 22 घाव लगे। राणा बेहोश होकर गिरने को ही थे, इतने में पृथ्वीराज 1000 सैनिकों सहित मैदान में पहुँचा गया। पृथ्वीराज की दृष्टि सूरजमल पर पड़ी। पृथ्वीराज ने सूरजमल को घायल कर दिया। रात होने पर युद्ध बंद हुआ। पृथ्वीराज फिर चाचा सूरजमल की कुशलता पूछने गया। घावों के बारे में जानकारी ली दोनों ने फिर एक थाली में साथ-साथ खाना खाया। दूसरे दिन फिर युद्ध हुआ। विद्रोही भाग गये पृथ्वीराज की विजय हुई। पृथ्वीराज फिर चित्तौड़ आया। राणा तो सूरजमल को चित्तौड़ से नहीं निकालना चाहते थे पर पृथ्वीराज सूरजमल को मेवाड़ में बिल्कुल ही नहीं रखना चाहता था। वह उसे सुई की नोंक के बराबर भी भूमि नहीं देना चाहता था। सूरजमल का उत्तर यह था कि वह अपने भतीजे के लिये उतनी ही धरती छोडेगा जितने में वह सो सके।

सूरजमल और सारंगदेव ने फिर बाटरडा के वन में घुसकर शरण ली। वहाँ धोंक की लकड़ी का डेरा बनाया। सूरजमल और सारंगदेव दोनों बैठे-बैठे तप रहे थे। तब यकायक घोड़ों की टापों की आवाज आई। सूरजमल ने कहा अवश्य ही भतीजा पृथ्वीराज है। पृथ्वीराज ने पहुँचते ही सूरजमल पर तलवार का वार किया पर सारंगदेव ने बचा लिया और युद्ध स्थगित करने को बोला। सूरजमल बोला मैं मर जाता तो कुछ भी नहीं होता पर भतीजा तू मर जाता तो चित्तौड़ का क्या होता। मेरे नाम पर सदा कलंक लग जाता। तलवारें चलना बंद हुई। काका भतीजा आपस में गले मिले। पृथ्वीराज ने पूछा चाचा मैं आया तब क्या बात कर रहे थे। सूरजमल ने कहा ऐसे ही आपस की बातें कर रहे थे। इस पर पृथ्वीराज ने कहा कि मेरे जैसा शत्रु सिर पर होते हुए आप निश्चिंत कैसे बैठे थे तो सूरजमल ने कहा मेरे पास कुछ बाकी बचा ही नहीं था। कहीं सिर टेकने को भी जगह नहीं थी इसीलिए निश्चिंत बैठा था। पृथ्वीराज ने चाचा सूरजमल को समीप के देवी के मंदिर में चलने को कहा। सूरजमल तो वहाँ नहीं गया पर सारंगदेव वहाँ गया। मंदिर में एक भैंसे का बलिदान दिया फिर बकरे का उसके बाद पृथ्वीराज ने अपनी तलवार सारंगदेव पर उठाई और उसका सिर देवी जी के चढा दिया। पृथ्वीराज ने फिर बाटरडे पर अधिकार कर लिया।

सूरजमल फिर सादड़ी की ओर चला गया। पृथ्वीराज ने फिर उसका पीछा किया। सूरजमल अपनी सब जागीर ब्राह्मणों भाटों को बाँटना चाहता था। पृथ्वीराज के वहाँ पहुँचने पर उसका स्वागत किया। सूरजमल की स्त्री ने पृथ्वीराज के सामने भोजन का थाल रखा। इस भोजन में विष मिलाया हुआ था। सूरजमल को इस बात का पता लगा पर यह पता नहीं लगा कि विष किस थाल में है। वह भी पृथ्वीराज के साथ थाल पर बैठ गया। इस पर सूरजमल की स्त्री ने तुरन्त विष वाली थाली उठा ली। पृथ्वीराज को इस बात का पता चल गया। वह चाचा की इस प्रकार प्राण रक्षा करने की बात से प्रभावित होकर बोला ''काका अब मेवाड़ का राज्य आपका है'' इस पर सूरजमल ने उत्तर दिया कि भतीजा राज्य तो एक और रहा वे जलपान के निमित्त भी मेवाड़ में नहीं ठहरेंगे। यह कहकर सूरजमल वहाँ से चल दिए। कांठल के वन से निकलते हुए उन्हें एक स्थान पर शकुन हुआ और उनकी धारणा बनी कि निवास के लिये यह स्थान उत्तम है और उसके बाद वे वहीं ठहर गए। इसके पश्चात् उन्होंने वन्य जातियों को अपने अधीन किया। जिस स्थान पर उन्हें शुभ सकुन हुए यानि जिस स्थान पर बकरी ने भेडिये को रोक रखा था, उसी स्थान पर उन्होंने देवलिये का गढ बनवाया। फिर एक हजार गाँवों के राजा हो गये। सूरजमल ने फिर एक राज्य स्थापित किया जो देवलिया प्रतापगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पृथ्वीराज ने फिर सांगा के बारे में पता किया तो पता चला कि उसे श्रीनगर (अजमेर) के कर्मचन्द पंवार

ने शरण दे रखी है। पृथ्वीराज ने फिर कर्मचंद पर आक्रमण करने का निश्चय किया पर इतने में ही सिरोही से उसकी बहन का समाचार आया कि उसका बहनोई उससे बहुत दुर्व्यवहार कर रहा है। पृथ्वीराज फिर तुरन्त सिरोही के लिये रवाना हो गया। रात के समय महलों में पहुँचा। पृथ्वीराज ने जाते ही बहनोई जगमाल के गले में कटार लगा दी। बहिन ने भाई से दया की भीख माँगकर जगमाल की जान बचाई जिस पर जगमाल को क्षमादान मिल गया। प्रातःकाल जगमाल ने दरबार लगाया और साले का सत्कार किया पर जब पृथ्वीराज विदा हुआ तो जगमाल ने पृथ्वीराज को माजून की तीन गोलियाँ दी। कुछ दूर जाने पर पृथ्वीराज ने उन गोलियों को खाया उनमें विष इतना तीव्र था कि थोड़ी दूर चलकर वे एक मंदिर तक पहुँच सके। स्त्री तारा को बुलाने दूत भेजा पर तारा के वहाँ पहुँचने से पहले पृथ्वीराज की जीवन लीला समाप्त हो गई। तारा वहाँ बाद में पहुँची। उसने फिर शव को गोद में रखा और अपने आपको अग्नि को समर्पित कर दिया। इतिहासकारों का मत है कि पृथ्वीराज का अंत इस प्रकार नहीं होता तो भारत में बाबर का साम्राज्य स्थापित नहीं होता। एक स्थान से दूसरे स्थान पर तुरन्त पहुँचकर शत्रु पर विद्युत वेग से टूट पड़ने के कारण यह पृथ्वीराज ***"उडणा पृथ्वीराज"*** कहलाया।

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

जीवन तो एक बहता हुआ प्रवाह है जिसमें यह समय न्यूनता को ही छूता है। विशेष कर ऐसे विषय में जहाँ हजारों वर्षों से समाज में विकृतियाँ धीरे-धीरे पनपती रही हों, वहाँ समाज को पुन: संस्कारित करने के लिये तो यह समय अत्यन्त ही अल्प है। ऐसे कार्य के लिये तो हजारों साल ही चाहिए। इस व्यावहारिक वस्तुस्थिति को जो नहीं समझते वे ऐसे आरोप लगा सकते हैं कि क्या किया संघ ने अब तक। भौतिक उपलब्धियों को जो मुख्य उपलब्धि मानते हैं, वे ही ऐसी बात कर सकते हैं। संघ ने जो लाखों लोगों में सामाजिक भाव जाग्रत कर दृढ बनाया है, हजारों लोगों के जीवन में जो निखार पैदा किया है और शाश्वत उद्देश्य की राह पकड़ाई है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन विषयों का जो महत्त्व समझते ही नहीं वे केवल सांसारिक पदार्थों को ही सब कुछ मानते हैं। पर संघ धैर्यपूर्वक, निरन्तर निष्कामता के साथ गीतोक्त कार्य में संलग्न है।

चुनाव सम्पन्न :

राजस्थान विधानसभा के चुनाव सम्पन्न हुए। सत्तासीन भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को इस चुनाव में हार का सामना करना पड़ा। कुछ माह पूर्व सम्पन्न हुए उप चुनावों में भाजपा की जैसी हार हुई थी, उससे तो लोग अन्दाज लगाते थे कि भाजपा को इन चुनावों में 35-40 से अधिक सीटों पर जीत नहीं मिल पाएगी और कांग्रेस को प्रचण्ड बहुमत प्राप्त होगा। कांग्रेस जीत गई मगर जैसा अन्दाज लगा रहे थे वैसा बहुमत नहीं मिला। दूसरी तरफ भाजपा हारी मगर इसे सम्मानजनक हार कहा जा रहा है।

इन चुनावों में राजस्थान के दोनों ही प्रमुख राजनैतिक दलों-भाजपा व कांग्रेस ने गत विधानसभा चुनावों की तुलना में राजपूतों को कम टिकट दी। कुछ लोग निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में भी चुनाव मैदान में उतरे। प्रबल उम्मीदवार थे पर जो प्रचार के समय उनके साथ थे वे भी फिर दलों के साथ हो गए।

दलों द्वारा हमारे समाज के कम उम्मीदवार मैदान में उतारे गए, उसके बावजूद भी यदि समाज का रुख समझदारी पूर्ण होता और हमारे सामाजिक भाव को दृष्टि में रखकर हम प्रयास करते तो अधिक संख्या में राजपूत विधायक होते। लेकिन हम भी बंटे हुए थे। आज की इस प्रजातंत्र शासन प्रणाली में, जो कि भीड़ तंत्र में रूपान्तरित हो चुकी है, बंटा हुआ समाज सदैव पिछड़ता ही रहेगा। राजनैतिक दलों ने हमारी उपेक्षा की, इसके लिये दलों को दोष देकर बचने की बजाय हमें तो स्वयं हमारी ओर ही देखना चाहिए कि इस स्थिति के हम स्वयं कैसे जिम्मेवार हैं और जो कारण हमारी ओर से बने उनको भविष्य में न बने रहने दें। यही सामाजिक भाव हमारी स्थिति में सुधार ला सकता है।

मेहंदी के फूल

– संजयसिंह पीपली

दूर-दूर तक विस्तृत रेगिस्तान। सूना और शान्त। कहीं कहीं पर छोटी-छोटी बेर की झाड़ियाँ और खेजड़े के वृक्ष। शेष रेत ही रेत। आग उगलती धूप और स्तब्ध पवन। ऐसी निस्तब्धता को भंग करती हुई एक बस कच्ची सड़क पर तेजी से जा रही थी। उसमें पीछे कितने ही अपरिचित अनजान स्त्री-पुरुष रंग-बिरंगे साफे पहने और स्त्रियाँ ओढ़ने ओढ़े हुए थे।

सबसे पीछे की सीट पर एक राजपूत युवक मुकलावा (गौना) करके आ रहा था। उनसे चार सीट आगे एक सेठ अपनी नवविवाहिता बेटी को लेकर लौट रहा था। वह लड़की अद्वितीय सुन्दरी थी। उसका केसर सा रंग केसरिया वस्त्रों में एकमेक हो रहा था और उन पर जड़े सलमे-सितारे उसके सौंदर्य की श्रीवृद्धि कर रहे थे।

कच्ची सड़क होने की वजह से हिचकोले जरूरत से ज्यादा आ रहे थे, पर ड्राईवर अत्यन्त सजगता से स्टीयरिंग को संभाले हुए था। अप्रत्याशित, जिधर बस जा रही थी, उसके पूर्व की ओर धूल के बादल उड़ते हुए नजर आये। सारे यात्री शंकित हो गए। एक चौधरी ने बीड़ी सुलगाते हुए कहा, ''शायद भहलोटिया उठा है।'' सेठ ने अपनी इंद्रधनुषी पगड़ी को उतार कर अपने गंजे सिर पर चमकती पसीने की बूंदों को पौंछा फिर अपनी नवविवाहित लड़की मन्नी से धीरे से कहने लगा,-''सुन री छोरी, आँधी आने वाली है, अपने गहनों को ध्यान से रखना।''

नवविवाहिता मन्नी ने गले में सोने का तिमणिया और कांठलिया पहन रखा था। सिर पर बड़ा बोरला था। दोनों कानों में बालियाँ झिलमिला रही थी। नाक में कांटा था, पांवों में चाँदी के भारी भारी बिछवे। बाप का संकेत पाकर मन्नी ने अपने ओढ़ने से अपने शरीर को ढक लिया। मुकलावा करके आने वाला राजपूत अपनी कमर में लटकती तलवार को निरुद्देश्य देख रहा था। उसके समीप बैठा उसका मित्र अपनी हाथ की कटार से खेल रहा था। धूल के बादल और गहरे हुए। वे बस के समीप आने लगे। यात्रियों की आँखें उस ओर जम गई। ड्राईवर ने बस की रफ्तार को और तेज कर दिया। तभी गोली की आवाज सुनाई पड़ी। गोली की आवाज के साथ यात्रियों ने देखा कि धूल के बादलों को चीरती हुई एक जीप आ रही है, जीप में चार आदमी बैठे हैं, जिनके चेहरे कपड़ों से ढके हुए हैं। एक यात्री चिल्लाया,-''ड्राईवर! डाकू आ गए हैं।'' सारी बस में सनसनी फैल गई। डाकू शब्द फुसफुसाहट में बदल गया। सेठ ने जोर से कहा, ''बस को और तेज करो।'' एक गोली बस के अगले शीशे के ऊपर टकराकर हवा में उड़ गई। ड्राईवर के हाथ से स्टीयरिंग छूट गया। उसने घबराकर गाड़ी रोक दी। चंद क्षणों के अन्तराल पर जीप बस के आगे थी। अब यात्री जीप में बैठे सभी यात्रियों को अच्छी तरह से देख सकते थे। बस में मृत्यु सा सन्नाटा छा गया था। लोग एक दूसरे को भयभीत दृष्टि से देख रहे थे जैसे वे पूछ रहे हों कि अब क्या होगा? जीप में बैठे लोग उतर गए। उसमें ड्राईवर के अतिरिक्त पाँच लोग और थे। एक के हाथ में तनी हुई बन्दूक थी।

बन्दूकधारी ने फिर अपना परिचय दिया, ''मैं तेजा हूँ। मैं तुम लोगों में से किसी को कुछ भी नहीं कहूंगा... मैं सिर्फ इस सेठ की बेटी को लेने आया हूँ।'' शेष यात्रियों ने राहत का अनुभव किया। लेकिन सेठ और उसकी नवपरिणिता बेटी काँप उठी। लड़की मन्नी अपने बाप से चिपट गई। तेजा उन दिनों मरुस्थल का कुख्यात डाकू था। उसने कई जानें ली थी और अब वह सच्चे डाकुओं की मान मर्यादा का परित्याग करके नीचे से नीचे काम करने पर उतारू हो गया था। चूंकि दूसरे डाकू अपने पेशे की नैतिकता और उसके धर्म को लेकर चलते थे, इसलिए उन्होंने तेजा से स्पष्ट कह दिया था कि अब वे उसके साथ नहीं रह सकते। वह गाँवों से निरीह लड़कियों को उठा लाता था। किसी-किसी को जान से भी मार देता था। तेजा में एक राक्षस की सारी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई थी।

तेजा एक बार फिर शेर की भाँति गरजा,-''सेठ अपनी बेटी को मेरे हवाले राजी-राजी कर दे।'' मन्नी ने अपने बाप को मजबूती से पकड़ लिया। दोनों थर-थर काँपने लगे। दोनों के चेहरे वर्षो से बीमार की तरह पीले पड़ गये थे। तेजा की आँखों में रक्तिम डोरे उतर आये। वह उस खिड़की के पास आकर बोला,-''सुना नहीं सेठ! लड़की को मेरे हवाले करो वरना मैं गोली मारता हूँ।'' लड़की क्रन्दन करती हुई अपने भयातंकित बाप से और लिपट गई। रुआंसे स्वर में बोली,-''नहीं, बापू नहीं। मुझे इसके हवाले न करना.......बापू।''

तेजा चिल्लाया, ''बन्ना, जाकर लड़की को ले आ।'' तेजा का साथी अपने सरदार का आदेश पाकर बस में घुसा। तेजा ने तत्काल एक हवाई फायर किया। सारे यात्री कलेजा पकड़कर बैठ गए। उन्हें महसूस हुआ कि गोली उनके सीने में दाग दी गई है। सबकी आँखों में आशंकित मृत्यु का भय और जड़ता उभर उठी। बन्ना ने भीतर घुसकर बाप से बेटी को छुड़ाना चाहा। बाप ने काँपते हाथों को जोड़कर प्रार्थना की, ''माई-बाप! मेरी बेटी को छोड़ दीजिए, मैं आपको सारे जेवर दे दूँगा।'' परन्तु लोभ में अन्धे तेजा को उस लड़की के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। जब बाप ने लड़की को नहीं छोड़ा तब तेजा ने बन्दूक के पिछले हिस्से से सेठ के सिर पर चोट की। आर्त्तनाद के बीच लड़की घसीटकर बाहर निकाल ली गई। सब यात्री निर्जीव से बैठे रहे। वे गूंगे-बहरे बनकर अपनी सीटों से चिपक गए थे। लग रहा था, कोई है ही नहीं इस बस में।

लड़की अब भी चीख चिल्ला रही थी। बन्ना उसे बाँहों में ले चुका था। तभी मुकलावा करके लौट रहे राजपूत युवक की पत्नी थोड़ा-सा घूंघट हटाकर तेज स्वर में बोली,-''आप सब चुल्लू भर पानी में डूब मरिए। आपके सामने एक लड़की को डाकू उठा ले जा रहे हैं। और आप हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। थू आप सब पर।'' अचानक इस तेज फटकार से बस में तनिक हलचल हुई। राजूपत युवक अपनी पत्नी को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखने लगा। शायद सोच रहा हो कि इसे यकायक यह क्या हो गया है। यह हमारी कौटुम्बिक परम्पराओं को तोड़कर क्यों घूंघट उठा रही है। राजूपत पत्नी की आँखों में अंगारे बरस रहे थे। उसने थोड़ा-सा घूंघट और खींचकर अपने पति से कहा,-''मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ, कुंवर सा। आप मुझे इस गलती की बाद में कोई भी सजा दे दीजिएगा। किन्तु कुँवर सा, आपकी वीरता कहाँ चली गई? जो क्षत्रिय गौ, ब्राह्मण, अबला का रक्षक कहलाता था, जिन पर हँसते-हँसते वह उत्सर्ग हो जाता था, उसी के सामने एक लड़की मुक्ति की भीख माँग रही है, और आप पत्थर की तरह चुपचाप बैठे हैं। क्या आपका खून पानी हो गया है? वरना क्या मजाल थी कि एक सच्चे राजपूत के होते हुए कोई चोर-डाकू किसी बाप से उसकी बेटी छीनकर ले जाए।'' अपनी पत्नी की तेजस्वी ललकार पर राजपूत खड़ा हो गया। उसके सिर पर लाल रंग का साफा था। उसकी बाँकड़ली मूंछों पर उसका हाथ ताव देने चला गया। जोश में उसके नथूने फुरकने लगे। फिर वह अपनी तलवार की मूंठ पर हाथ रखकर इतना ही बोल पाया-''कुँवराणी........।''

कुंवराणी पूर्ववत् स्वर में बोली,-''आज सारे इतिहास को आग लगानी पड़ेगी। राजपूतों के शौर्य को मिटाना होगा। वरना एक राजपूत के होते हुए डाकू लड़की को उठाकर ले जाए। छि: छि:।'' राजपूत चीख पड़ा,-''क्षत्राणी, चुप रहो।'' ''मैं चुप नहीं रहूँगी। मैं कहूँगी कि आप सब मर्दों को चूड़ियाँ पहन लेनी चाहिए।'' सेठ की बेटी को जीप में डाल दिया गया। वह क्रन्दन करती हुई बेहोश हो गई थी। खूंखार डाकू तेजा बन्दूक लेकर उसके समीप बैठ गया। उसने ड्राईवर को आज्ञा दी, ''जीप रवाना करो।'' पर जीप घर्र-घर्र करके रह गई। तेजा ने बन्दूक के पिछले हिस्से से ड्राईवर को हल्का-सा धक्का देकर कहा-''जीप चलती क्यों नहीं?'' कुंवराणी ने सचमुच अपने हाथ की चूड़ियाँ खोलकर अपने पति की ओर बढ़ा दी,-''लीजिए, इन्हें पहनकर आप बैठिये, और तलवार मुझे दीजिए।''

राजूपत ने आवेश में आकर कांपते हुए अपने स्वर पर काबू करके कहा, ''कुंवराणी मैं राजूपत तो वही हूँ

पर समय बदल गया है।'' ''कैसा समय बदल गया? राजूपत के लिये दूसरों की रक्षा करने का कोई समय नहीं होता।'' तेजा पागलों की तरह चीखा-''जीप चलाओ।'' राजपूत ने किंचित व्यथित स्वर में कहा, ''जरा होश में आकर बात करो। हम अभी गौना करके आए हैं। तुम्हारे हाथों की मेहंदी का रंग भी अभी नहीं उतरा है। ऐसे समय में मत मुझे ललकारो।''

जीप ड्राईवर ने हाथ जोड़कर विनीत स्वर में कहा- ''सरदार बैटरी बैठ गई है।'' तेजा चीखा-''क्या बकते हो?'' ''सरदार सच कह रहा हूँ।'' राजपूतानी ने हाथ जोड़कर कहा, ''आपके माता-पिता जब यह सुनेंगे कि यह एक लड़की की रक्षा नहीं कर पाया, तो वे जीते जी मर जायेंगे।'' ''स्थिति को देख लो। पल भर में तुम विधवा हो सकती हो।''

''विधवा! कुँवर सा, विधवा तो मैं तब भी हो सकती हूँ जब आप खेत में काम कर रहे हों, और आपको कोई काला नाग डस जाए। आप जोर से खिलखिलाकर हँसे और हँसते ही परलोक सिधार जाएँ। पर यह मृत्यु कितनी महान और आदरमयी होगी। यदि आपने उस अबला की रक्षा नहीं की, तो मैं समझूंगी कि मैं जीते ही विधवा हो गई हूँ।''

राजूपत अब अपने आपको नहीं रोक सका। वह क्रोध से बावला हो गया। उसके नेत्र अंगारों से हो गए। वह तड़ककर बोला, ''तुम राजपूत के जौहर देखना चाहती हो?'' ''मैं उसे अपने धर्म पथ पर चलते देखना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ, वह अपने अतीत को न भूले। वह अपने धैर्य और कर्त्तव्य को न भूले।'' उसी समय एक कार आयी। तेजा ने अपने ड्राईवर से कहा, ''इस कार में से बैटरी लगाओ।'' उसने हाथ के इशारे से कार को रोक दिया। राजपूत ने अपने साथी की कटारली। भूखे बाज की तरह वह बस से उतरा। तेजा बन्दूक लिये खड़ा था। राजूपत ने वहीं से कटार फैंकी, कटार तेजा की पीठ पर जा लगी। तेजा ने बन्दूक तानी। राजपूत तलवार निकाल कर उस पर झपटा। फायर! राजपूत का एक हाथ जख्मी हो गया। उसने उसकी कोई परवाह नहीं की। वह तेजा पर टूट पड़ा। उसको इस तरह टूटते हुए देखकर राजपूत का साथी भी लपका। तेजा दूसरा फायर करना चाहता था कि राजपूत के साथी ने बन्दूक को पकड़कर ऊपर की ओर कर दिया। राजपूत ने तलवार से वार करने शुरू किए। जिसके तलवार लग गई, वह वहीं ढेर हो गया। लेकिन तेजा बहुत ही बलिष्ठ और साहसी था। उसने जोर से धक्के से राजपूत के साथी को गिरा दिया। बन्दूक को उस पर तानकर जैसे ही फायर करना चाहा, वैसे ही राजपूत ने तेजा पर तलवार का वार कर दिया। तेजा को एक बार धरती घूमती हुई लगी। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। लेकिन वह खूंखार भेड़िया फिर भी संभला। पूरे जोश के साथ वह राजपूत पर टूट पड़ा।

तभी राजपूतानी जोर से चिल्लाई, ''आप सब बस में बैठे-बैठे क्या कर रहे हैं? जाइए न, उनकी मदद कीजिए! जाइए......।'' उसकी ललकार पर एक किसान और ड्राईवर कूद पड़े। ड्राईवर के हाथ में एक लोह की हथौड़ी थी। किसान ने आई हुई कार का हैंडिल ले लिया। दोनों तेजा पर टूट पड़े। फायर। चीखें! लोगों ने देखा कि राजूपत एक ओर लुढ़क गया है। अब राजपूतानी अपने को नहीं रोक सकी। बेतहाशा अपने पति की ओर लपकी। पहली बार लोगों ने उस वीरता की तेजस्वी महान् नारी के दर्शन किए। उसका चेहरा अद्भुत ओज से दीप्त था। आँखें बड़ी-बड़ी और साहस की प्रतीक थी। राजपूतानी को उतरते देखकर बस की भीड़ डाकुओं पर टूट पड़ी। डाकू तेजा भी बेहोश हो गया था। उसके साथी अब बस के लोगों के कब्जे में थे। राजपूत घायल अवस्था में तड़प रहा था। वह अस्फुट स्वर में कह रहा था ''पानी......पानी।'' राजपूतानी ने आकुल स्वर में कहा, ''पानी।'' तुरन्त पानी लाया गया। पानी की बूंदों के मुँह में जाते ही राजपूत ने आँखें खोली।

उस समय तक सेठ भी सचेत हो गया था। जब उसे मालूम हुआ कि उसकी बेटी की रक्षा के लिये वीर ने डाकुओं से संघर्ष किया है, तब वह राजूपत की ओर लपका। मन्नी को भी पानी छिड़ककर सचेत कर दिया गया। वह भी राजपूत के पास आ गई थी। राजपूत ने

स्नेह-विचलित स्वर में कहा, ''कुंवराणी वह लड़की कहाँ है?'' कुंवराणी ने सजल नेत्रों से देखा। तभी सेठ ने कहा, ''यह रही मन्नी, मेरी बेटी, बिल्कुल ठीक है। आओ बेटी, इधर आओ, तुझे तेरा भईया पुकारता है।'' मन्नी राजपूत के पास आई। राजपूत का एक हाथ बिल्कुल घायल हो चुका था। एक गोली सीने में लग गई थी। लहु-लुहान दूसरा हाथ भी था, किन्तु उसने दूसरे हाथ से मन्नी को आशीष दिया। उसके सिर पर हाथ रखकर धीमे-धीमे स्वर में बोला, ''अच्छी है न, बहन?'' मन्नी से कुछ बोला भी नहीं गया। वह फफक पड़ी। बाद में राजपूत ने राजपूतानी की ओर देखा। उससे वह टूटते स्वर में बोला,-''कुंवराणी! मैंने तुम्हारी बात पूरी कर दी, वह लड़की अच्छी है। अच्छा कुंवराणी! भूल चूक माफ करना। मेरे माँ बाप की जिम्मेदारी अब तुम पर है। वे बहुत बूढ़े हो चुके हैं।'' कुँवराणी दहाड़ मार बैठी, राजपूत के चेहरे का ओज निस्तेज हो गया। वातावरण में मृत्यु की खामोशी और सन्नाटा छाता गया। सारे यात्रियों की आँखें नम थी। समीप ही तेजा अचेत पड़ा था। जो कार आई थी, उससे राजपूत को अस्पताल ले जाने और पुलिस को खबर करने की व्यवस्था की गई। उसने एक बार फिर कुँवराणी की ओर देखा। उसके हाथों की मेहंदी के फूल महक रहे थे। राजपूत अपनी बुझती आँखों से उन मेहंदी के फूलों को देखता रहा जो सुहाग के चिह्न थे। राजपूतानी विपुल वेदना से तड़प रही थी। वह एक बार फिर चीखी, ''इन्हें जल्दी अस्पताल ले चलिए।'' लोगों ने राजपूत को उठाना चाहा। उसने हाथ से न उठाने का संकेत किया। उसका चेहरा और स्याह हो गया। उसने एक बार फिर मेहंदी रचे कुंवराणी के हाथों को देखा और मुस्कराया, उन्हें चूमा। कुंवराणी दर्द से काँप रही थी उसने कांपते हुए स्वर में कहा, ''आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे, इन्हें जल्दी अस्पताल ले चलिए।'' और राजपूत ने कुंवराणी के हाथों को अपने सीने से लगा लिया। उसकी आँखें फट गई। उसके हाथ फैल गए। कुंवराणी और सारी उपस्थिति सुबक पड़ी। कुंवराणी ने अपने हाथ उठाए। हाथों पर बने मेहंदी के फूल खून से वीभत्स धरातल की तरह सपाट बन गए थे, जैसे उन पर कुछ था नहीं सिवाय रक्त के।

✲

पृष्ठ 9 का शेष

खोये हैं प्रश्न मैंने

वास्तव में इस प्रश्न से आगे कोई प्रश्न होना ही नहीं चाहिए। है ही नहीं। श्री कृष्ण इस प्रश्न को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए होंगे और बड़े उत्साह के साथ उत्तर देने को तैयार हुए होंगे कि अर्जुन दूसरा, तीसरा प्रश्न पूछने लगा। कल्पना करें कि अर्जुन के सारे प्रश्नों के बाद यदि श्रीकृष्ण पूछते कि 'अर्जुन! तुम्हारा पहला प्रश्न क्या था?' प्रश्नों के कारवाँ में खो गया अर्जुन भूल ही गया होगा कि मेरा पहला प्रश्न क्या था?

पूछने जैसा यही एक प्रश्न है। जिज्ञासा करनी है तो केवल इसी बात की करनी चाहिए कि ब्रह्म क्या है?

बादरायण का ब्रह्मसूत्र एक छोटी-सी जिज्ञासा से शुरू होता है और इस जिज्ञासा के समाधान हेतु पूरा ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ है। ब्रह्मसूत्र एक छोटे से प्रश्न से, तीन शब्दों की जिज्ञासा से शुरू होता है और ये तीन शब्द हैं,-

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।

यहाँ से अब ब्रह्म जिज्ञासा शुरू होती है और बहुत मूल्यवान बात यह है कि प्रारम्भ में की गई जिज्ञासा ही अन्तिम जिज्ञासा है, होनी ही चाहिए क्योंकि यदि ब्रह्म समझ में आ गया तो फिर आगे कुछ जानने जैसा रहता ही नहीं।

अर्जुन ने पूछा था-किं तद् ब्रह्म। मगर वह और प्रश्न पूछते थकता ही नहीं। यदि इसी प्रश्न को पूछकर शान्त हो जाता तो...........।

जाने दो। हमें तो पूज्य तनसिंहजी की बात करनी है। आपश्री की उच्चतम या गहनतम स्थिति का चिन्तन करना है। उनकी वह मानसिकता कैसी होगी कि जहाँ सारे प्रश्न खो गए होंगे? क्या हमारी भी अभीप्सा हो सकती है कि हम भी उस स्थिति को प्राप्त करें? और ऐसी अभीप्सा का होना, मतलब हमारी पूर्णत्व प्राप्ति की यात्रा का शुभारम्भ। ऐसी अभीप्सा हमारे हृदय की गहराई से उठे, यही पूज्यश्री को सही श्रद्धांजलि होगी।

रानी विष्णुप्रसाद कुँवरिजी बाघेली

– *अवधबिहारीलाल कपूर*

मध्यप्रदेश के बाघेल खण्ड में बाघेलों का राज्य रहा है। बाघेल क्षत्रिय सोलंकियों की एक शाखा है। बाघेल राजाओं की राजधानी पहले बाघवगढ़ थी, पीछे रीवाँ हो गई। बाघवगढ़ के श्रीराजा राम बाघेल बड़े भक्त हो गये हैं। सेनजी नाई का रूप धारण कर उन्हीं के शरीर में भगवान ने तेल-मालिश की थी। बाद में उनकी भक्ति से प्रसन्न हो उन्हें साक्षात् दर्शन देकर वरदान दिया था कि उनके वंशज भक्त होंगे। वरदान के अनुसार आज तक बाघेल खण्ड के राजा भक्त होते आये हैं। इन्हीं की परम्परा में महाराजा रघुराजसिंह देवजी रीवाँ के राजा हुए हैं। वे भी परम भक्त थे। 'राम स्वयंवर' 'राम रसिकावली' 'रुक्मिणी परिणय' आदि ग्रन्थ भक्त-समाज को उनकी अनुपम देन है। उनके समय में राज्य में बहुत से मठ-मंदिरों का निर्माण हुआ। साधु महात्माओं के लिये उनका द्वार सदा खुला रहता। कथा-कीर्तन, सत्संग का दौर बराबर चलता रहता।

भक्ति के उसी वातावरण में सं. 1903 में विष्णुप्रसाद कुंवरि जी ने जन्म लिया। बचपन से ही उनमें भी भक्ति का बीजारोपन हुआ। कथा-कीर्तन, अर्चन-पूजन में उनकी असाधारण रुचि का परिचय मिलने लगा। इसलिए अल्पावस्था में ही उन्हें वैष्णवी दीक्षा रामानुजी सम्प्रदाय में दिलवा दी गयी और वे विधिवत् सेवा-पूजा में संलग्न रहने लगीं।

उनका विवाह महाराजा रघुराजसिंह जूने जोधपुर के महाराजा श्रीतख्तसिंहजी राठौड़ के ज्येष्ठ पुत्र युवराज जसवंतसिंहजी से करना चाहा। सम्बन्ध तय हो गया। टीका भेजा गया। टीके के समय महाराजा तख्तसिंहजी ने जसवंतसिंहजी की जगह अपने छोटे पुत्र राजकुमार किशोरसिंहजी को टीके के लिये प्रस्तुत किया। टीका ले जाने वाले ने उसी को जसवन्तसिंहजी समझकर टीका उसे चढ़ा दिया।

विवाह की तिथि सं. 1921 के एक दिन निश्चित हो गयी। जोधपुर के पाँच सौ सरदारों की बारात रीवाँ पहुँची। विवाह मंडप में जब वर के रूप में राजकुमार किशोरसिंह को देखा गया, तब महाराजा रघुराजसिंह ने समझ लिया कि उनके साथ धोखा किया गया और उनका अपमान किया गया। वे गुस्से से तमतमा उठे। तुरन्त सेना को जनवासा चारों ओर से घेर लेने का हुक्म दिया। रीवाँ में कोलाहल मच गया। राजप्रसाद में मायूसी छा गयी। वर की हत्या कर देने का षड़यंत्र रचा जाने लगा। मंडप में वधू बनी बैठी राजकुमारी विष्णुप्रसाद कुंवरि को विवाह से पूर्व ही वैधव्य दहेज में मिलना दीखने लगा। वे कुछ देर अश्रु विसर्जन करती हुई होनी के आगे सिर झुकाये बैठी रहीं। पर वे यह सोच कर काँप उठी कि उनके कारण एक बड़ा नर संहार होने जा रहा है। उन्होंने अपने मन में युवराज जसवंतसिंह जी को ही अपना पति मान लिया था, तो भी नरसंहार बचाने के लिये उन्होंने पिता से आग्रह किया कि वे किशोरसिंह से ही उनका विवाह कर दें। उनके और दोनों ओर के समझदार सरदारों के प्रयास से विपदा टल गयी और एक पारस्परिक समझौते के अनुसार विवाह सम्पन्न हो गया। वधू को रानी जैसे सम्मान के साथ जोधपुर ले जाया गया।

विवाह तो हो गया। पर राजकुमारी बड़े धर्म-संकट में पड़ गयीं। वे कोई साधारण महिला तो थीं नहीं। एक आदर्श हिन्दू नारी थीं। हिन्दू नारी मन में भी जिसे पति मान लेती है उसे छोड़ दूसरे को नहीं वर सकती। विष्णुप्रसाद कुँवरिजी ने तो युवराज जसवंतसिंहजी को अपना पति मान लिया था। मनमंडप में उनका विवाह उनसे हो गया था। विवाह-मंडप में उनका विवाह राजकुमार किशोरसिंह से कर दिया गया उनके पातिव्रत्य-धर्म के साथ जो खिलवाड़ किया गया उसने सांसारिक सम्बन्धों में उनकी आस्था को निर्मूल करदिया। संसार के नाते रिश्ते, संसार का सुखैश्वर, मान-सम्मान यहाँ तक

कि उनका अपना लौकिक जीवन भी उन्हें निरर्थक प्रतीत होने लगा। उनके भक्ति के संस्कार और भी प्रबल हो उठे। वे भगवान् श्रीकृष्ण से शाश्वत् दाम्पत्य-सूत्र में बंध जाने को विकल हो उठीं। उन्होंने अपने-आप को कृष्णार्पित कर दिया। सांसारिक दाम्पत्य-सुख, राज-वैभव और राज-प्रासाद आदि को त्यागकर आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारिणी बनी रहकर कृष्ण-भजन करने का दृढ़ संकल्प किया।

जोधपुर के हाथीखोला क्षेत्र में उन्होंने अपने इष्ट श्रीदीनानाथजी का भव्य मंदिर बनवाया। वहीं आरम्भ की त्याग-तितिक्षामयी श्रीकृष्ण की प्रेम-साधना। विवाह की घटना उनके लिये एक वरदान बनकर रह गयी। उसके कारण उनका लौकिक जीवन पारलौकिक जीवन में बदल गया। संसार की मृगमरीचिका का अब उनके ऊपर कोई प्रभाव न रहा। किसी प्रकार की लोक-ईषना का अब उनके हृदय में स्थान नहीं रहा। उसका कण-कण श्रीकृष्ण-प्रेम से भरपूर हो गया।

जब हृदय लोक-ईषना से पूरी तरह खाली हो जाता है, तब कृष्ण की प्रेमलीला का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। तब कृष्ण-प्रेम का स्रोत हृदय में अपने-आप फूट पड़ता है। कृष्ण-प्रेम कृष्ण को खींच लाने की अलौकिक शक्ति रखता है। कृष्ण सहज ही खिंचे चले आते हैं। कृष्ण की मनोहारिणी छवि और लीलाओं से हृदय परिपूर्ण हो जाता है।

विष्णुप्रसाद कुँवरिजी के साथ भी यही हुआ। वे कृष्ण-प्रेम-सागर में निमग्न हो गयीं। कृष्ण की मनोहारिणी छवि और उनकी दिव्य लीलाओं के विविध रूप में उन्हें दर्शन होने लगे। कृष्ण उनके लिये अब केवल उपास्य नहीं रहे, उनके जीवन का अंग बन गये। उनके साथ उनका उठना-बैठना, हँसना बोलना ऐसा हो गया जैसा लौकिक जीवन में पति के साथ होता है। कई बार उन्हें एकान्त में श्रीकृष्ण से बातें करते सुना गया। तब उनके पति के मन में किसी अन्य पुरुष से उनके बातें करने का संदेह जागा। पर गुप्तचरों के माध्यम से जब पता चला कि वह पुरुष श्रीकृष्ण के सिवा और कोई नहीं था, तो उनका माथा सम्मान और श्रद्धा-भक्ति से झुक गया। महाराजा तख्तसिंहजी भी उनके प्रति विशेष श्रद्धा और कृपा-दृष्टि रखने लगे। उनका सारा जीवन श्रीकृष्ण भजन में, श्रीकृष्ण-सान्निध्य में सुख शान्ति पूर्वक बीता। इसकी पुष्टि होती है-''रास-गाथा'' नाम के उनके ग्रन्थ से जिसमें उन्होंने श्रीकृष्ण की विविध प्रकार की छवियों और लीलाओं का संगीत-लहरी की विविध राग-रागनियों में सुन्दर वर्णन किया है। 'अवध विलास' और 'कृष्ण-विलास' नाम के इनके दो ग्रन्थ और भी हैं। कानपुर के 'रसिक-मित्र' में इनकी कविताएँ प्राय: छपा करतीं।

विष्णुप्रसाद कुँवरिजी का धाम-गमन वि.सं. 1955 के कुछ वर्ष बाद हुआ, जब किशोरसिंहजी की मृत्यु हुई।

✻

- : शिविर सूचना :-

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं-

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
01.	दंपति शिविर	02.02.2019 से 04.02.2019	भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम, बाड़मेर। सभी शिविरार्थी 2 फरवरी को सुबह 8.00 बजे पहले पहुँचें।

शिविर कार्यालय प्रमुख

(श्री क्षत्रिय युवक संघ)

अपनी बात

पूज्य तनसिंहजी के निर्वाण दिवस के अवसर पर माननीय संघप्रमुखश्री ने संघ के सतत् स्मरण की बात कही। सतत् स्मरण, अर्थात् जीवन का प्रत्येक कर्म करते हुए भी संघ का स्मरण रहे। सतत स्मरण कैसे सम्भव हो सकता है, यह प्रश्न एक बार कबीरदासजी से किसी ने पूछा। पूछा कि आप तो दिन भर कपड़ा बुनते रहते हो, ऐसे में प्रभु का स्मरण कब करते होंगे? कबीर जुलाहे थे, जुलाहे का कर्म ही करते थे। प्रभु को जान लिया, फिर भी कपड़ा बुनते रहे। झीनी-झीनी चदरिया बुनते रहे। रोज सांझ उन्हें बेचने चले जाते बाजार में। तब लोग पूछेंगे ही कपड़ा बुनने में और उसे बेचने में ही लगे रहते हैं तब प्रभु का स्मरण कब करते हैं?

प्रश्नकर्ता को कबीर अपने झोंपड़े से बाहर लेकर आए और कहा कि मैं तो शायद इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें न समझा सकूँ, पर देखो बाहर शायद कोई चीज से तुम्हें समझा सकूं। बाहर आने के थोड़ी देर बाद प्रश्नकर्ता ने कहा-अब बताइये भी। कबीर ने कहा-ठहरो मौका आने दो। अभी मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है जिससे मैं तुम्हें समझा सकूँ। वही मैं देख रहा हूँ। आओ जरा चलते हैं। थोड़ी देर में प्रश्नकर्ता थक गया। उसने कहा-क्या मैं अब घर जाऊँ, मुझे दूसरे काम करने हैं। आप तो न जाने कब बताएंगे? कबीर ने कहा, ठहरो-ठहरो आ गया मौका।

एक स्त्री नदी से पानी की गागर भर कर सिर पर रखकर चल पड़ी है। शायद उसका प्रियजन उसके घर आया होगा। कोई अतिथि-कोई मेहमान। उसके चेहरे पर बड़ी प्रसन्नता थी। उसकी चाल में तेज गति है। वह उमंग से भरी और नाचती जैसी चलती है, ऐसे वह चल रही है। गागर उसने बिलकुल छोड़ रखी है, सिर पर गागर संभली है।

कबीर ने कहा,-इस स्त्री को देखो। वह कुछ गुनगुना रही है गीत। शायद उसका कोई प्रियजन आया होगा। उसकी प्यास बुझाने के लिये वह पानी लेकर जा रही है। दौड़ती जाती है। हाथ दोनों छूटे हुए हैं, गागर सिर पर है। जरा बताओ इसको गागर की याद होगी या नहीं होगी? गीत गाती है, चलती है रास्ते पर, उमंग से भरी है, फिर भी गागर का स्मरण होगा या नहीं होगा? उस प्रश्नकर्ता ने कहा-यदि उसे गागर का स्मरण नहीं होगा तो कभी भी संतुलन बिगड़ जाएगा और गागर नीचे गिर जाएगी।

तब कबीर ने कहा,-यह साधारण सी औरत रास्ता पार करती है, गीत गाती है, फिर भी गागर का स्मरण भीतर बना रहता है। तो तुम मुझे इससे भी गया बीता समझते हो कि मैं कपड़ा बुनता हूँ और परमात्मा का ख्याल करने के लिये मुझे अलग से समय निकालना पड़ेगा, मेरी आत्मा निरंतर परमात्मा के स्मरण में लगी हुई ही है। इधर कपड़ा बुनता रहता है, कपड़े के बुनने का काम शरीर करता है, आत्मा उधर प्रभु के गुणों में लीन बनी रहती है, डूबी रहती है। आत्मा प्रभु में डूबी रहती है, इसलिए ये हाथ भी आनन्द से मग्न होकर कपड़ा बुनते हैं।

कपड़ा भी तब कबीर का साधारण नहीं बुना जाता। कबीर जब ग्राहक को बेचते थे कपड़ा, तब कहते थे, राम बहुत संभलकर काम में लेना। साधारण कपड़ा नहीं है, प्रभु की स्मृति भी इसमें बुनी है। वे ग्राहक से कहते थे-राम जरा संभलकर वापरना। कोई ग्राहक कभी-कभी पूछ भी लेता कि मेरा नाम राम नहीं है। तो कबीर कहते, मैं तुम्हारे उस नाम की बात कर रहा हूँ, जो इस नाम के भी पहले तुम्हारा था और इस नाम के बाद भी तुम्हारा होगा। मैं तुम्हारे असली नाम की बात कर रहा हूँ। ये बीच में तुमने कौनसे नाम रखे उसका तुम हिसाब-किताब रखो। बाकी आखिर में जब सब नाम गिर जाएंगे, तब जो बचा रहेगा, मैं उसकी बात कर रहा हूँ।

संघप्रमुखश्री ने जिस सतत् स्मरण की बात कही, वह यही है कि हम सभी काम करें जो जीवनयापन के लिये आवश्यक है, लेकिन यह स्मरण सदैव बना रहे कि मैं संघ साधना का साधक हूँ। प्रत्येक काम मैं ऐसे करूं जो संघ साधना के अनुरूप हो। कोई काम ऐसा न करूं जो संघ सिखा रहा है, उससे विपरीत हो। जैसे भगवान ने गीता में कहा है- युद्ध कर और मेरा स्मरण कर। उसी प्रकार जीवन के सभी व्यापार करें लेकिन इस स्मरण के साथ कि केवल सांसारिक दायित्व निभाने के लिये ही मेरा जीवन नहीं है, संघ कार्य करने के लिये है, जिससे मैं परमेश्वर की राह पकड़ सकूँ।

✲

SHEESHAM HARDWOOD FURNITURE RETAIL CHAIN

In Houz
LIFESTYLE FURNITURE

KARAN SINGH RATHORE
9829345456
MAHENDRA SINGH RATHORE
9829233456

WWW.INHOUZDECOR.COM

natural living
Furniture for Life

BENGALURU		INDORE STORE		PUNE	
MARATHAHALLI STORE	8147298236	BICHOLI	9826224536	BANER STORE	9890251547
KALYAN NAGAR STORE	9829039836	VIJAY NAGAR	8827376689	ISHANYA MALL STORE	8605591119
JAIPUR STORE		**JODHPUR STORE**		AMANORA TOWN CENTRE	9049547158
SWEZ FARM	9116018206	RAI KA BAGH	9799042700	KHADI MACHINE CHOWK	9158591532
KANAK VRINDAVAN	9829081142	BORANADA	7073328445	**SIWANA STORE**	9649933554

जनवरी, सन् 2019
वर्ष : 56, अंक : 01

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह